कबीर साखी-संग्रह

[भाग १ तथा २]

"न भूतो न भविष्यति"—सुधाकर

मुद्रक एवं प्रकाशक

...लवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स,
इलाहाबाद

सन् १९८१ ई० [मूल्य

...at the Belvedere Printing Works, Allahabad

कबीर साखी-संग्रह

[भाग १ तथा २]

जिसमें

कबीर साहिब की अति कोमल और मनोहर साखियाँ कई पुस्तकों और फुटकर लिपियों से चुनकर बड़ी शुद्धता के साथ ८४ अंगों में छापी गई हैं।

"न भूतो न भविष्यति"—

मुद्रक एवं प्रकाशक

बेलवीडियर प्रिंटिंग वर्क्स,

इलाहाबाद

नवीं :] मूल्य १०) रु० [सन १९८० ई०

गुरु गोबिंद दोऊ खड़े, का के लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोबिंद दियो बताय ॥१०॥
बलिहारी गुरु आपने, घड़ि घड़ि सौ सौ बार।
मानुष से देवता किया, करत न लागी बार ॥११॥
लाख कोस जो गुरु बसैं, दीजै सुरत पठाय।
सबद तुरी असवार है, पल पल आवै जाय ॥१२॥
जो गुरु बसैं बनारसी, सिष्य समुन्दर तीर।
एक पलक बिसरै नहीं, जो गुन होय सरीर ॥१३॥
सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय।
सात समुँद की मसि करूँ, गुरु गुन लिखा न जाय ॥१४॥
बूड़ा था पर ऊबरा, गुरु की लहरि चमक्क।
बेड़ा देखा झाँझरा, ऊतरि भया फरक्क ॥१५
पहिले दाता सिष भया, जिन तन मन अरपा सीस।
पाछे दाता गुरु भये, जिन नाम दिया बकसीस ॥१
सत्त नाम के पटतरे, देवे को कछु नाहिं।
क्या लै गुरु संतोषिये, हवस रही मन माहिं ॥१७॥
मन दीया तिन सब दिया, मन की लार[1] सरीर।
अब देवे को कछु नहीं, यों कह दास कबीर ॥१८॥
तन मन दिया तो भल किया, सिर का जासी भार।
कबहूँ कहै कि मैं दिया, घनी सहैगा मार ॥१९॥
तन मन ता को दीजिये, जा के बिषया नाहिं।
आपा सबही डारि कै, राखै साहिब माहिं ॥२०॥
तन मन दिया तो क्या हुआ, निज मन दिया न जाय।
कहै कबीर ता दास से, कैसे मन पतियाय ॥२१॥
तन मन दीया आपना, निज मन ता के संग।
कहै कबीर निरभय भया, सुन सतगुरु परसंग ॥२२॥

(१) साथ।

निज मन तो नीचा किया, चरन कँवल की ठौर।
कहै कबीर गुरुदेव बिन, नजर न आवै और ॥२३॥
गुरु सिकलीगर कीजिये, मनहिं मस्कला[1] देइ।
मन का मैल छुड़ाइ कै, चित दरपन करि लेइ ॥२४॥
सिष खाँडा गुरु मस्कला, चढ़ै नाम खरसान[2]।
सबद सहै सन्मुख रहै, तो निपजै सिष्य सुजान ॥२५॥
गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजनहार।
सुरति सिला पर धोइये, निकसै जोति अपार ॥२६॥
गुरु कुम्हार सिष कुंभ[3] है, गढ़ गढ़ काढ़ै खोट।
अंतर हाथ सहार दै, बाहर बाहै[4] चोट ॥२७॥
सतगुरु महल बनाइया, प्रेम गिलावा दीन्ह।
साहिब दरसन कारने, सबद झरोखा कीन्ह ॥२८॥
गुरु साहिब तो एक हैं, दूजा सब आकार।
आपा मेटै गुरु भजे, तब पावै करतार ॥२९॥
ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति बिस्वास।
गुरु सेवा तें पाइये, सतगुरु[5] चरन निवास ॥३०॥
गुरु मानुष करि जानते, ते नर कहिये अंध।
महा दुखी संसार में, आगे जम के बंध ॥३१॥
गुरु मानुष करि जानते, चरनामृत को पानि।
[illegible] नर नरकै जाइँगे, जन्म जन्म ह्वै स्वान ॥३२॥
[illegible]ीर ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और।
[illegible] रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर ॥३३॥
[illegible] हैं बड़ गोबिन्द तें, मन में देखु बिचार।
[illegible] सुमिरै सो वार है, गुरु सुमिरै सो पार ॥३४॥
भेद [illegible] सीढ़ी तें ऊतरै, सबद बिहूना होय।
[illegible]ा को काल घसीटि है, राखि सकै नहिं कोय ॥३[illegible]

(१) [illegible]ली करने का औजार। (२) सान। (३) घड़ा। (४) लगाता है। (५) [illegible]

अहं अगिन निसि दिन जरै, गुरु से चाहे मान।
ता को जम न्योता दियो, होउ हमार मिहमान ॥३६॥

गुरु से भेद जो लीजिये, सीस दीजिये दान।
बहुतक भोंदू बहि गये, राखि जीव अभिमान ॥३७॥

गुरु समान दाता नहीं, जाचक सिष्य समान।
तीन लोक की सम्पदा[1], सो गुरु दीन्हा दान ॥३८॥

जम गरजे बल बाघ के, कहै कबीर पुकार।
गुरु किरपा ना होत जो, तौ जम खाता फार ॥३९॥

गुरु पारस गुरु परस है, चंदन बास सुबास।
सतगुरु पारस जीव को, दीन्हा मुक्ति निवास ॥४०॥

अबरन बरन अमूर्त जो, कहो ताहि किन पेख।
गुरु दया तें पावई, सुरत निरत करि देख ॥४१॥

पंडित पढ़ि गुनि पचि मुए, गुरु बिन मिलै न ज्ञान।
ज्ञान बिना नहिं मुक्ति है, सत्त सबद परमान ॥४२॥

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पुजा गुरु पाँव।
मूल नाम गुरु बचन है, मूल सत्य सत भाव ॥४३॥

कहै कबीर तजि भरम को, नन्हा है के पीव।
तेजि[2] अहं गुरु चरन गहु, जम से बाचै जीव ॥४४

तीन लोक नौ खंड में, गुरु तें बड़ा न कोइ।
करता करै न करि सकै, गुरु करै सो होइ ॥

कबिरा हरि के रूठते, गुरु के सरने जाइ।
कहै कबीर गुरु रूठते, हरि नहिं होत सहाय ॥

गुरु की आज्ञा आवई, गुरु की आज्ञा जाय।
कहै कबीर सो संत है, आवा गवन नसाय ॥४

(१) दौलत। (२) तज या छोड़ कर।

थापन[1] पाई थिर भया, सतगुरु दीन्ही धीर।
कबीर हीरा बनिजिया[2], मानसरोवर तीर ॥४८॥
कबीर हीरा बनिजिया, हिरदै प्रगटी खानि।
सत्त पुरुष किरपा करी, सतगुरु मिले सुजान ॥४९॥
निस्चय निधी मिलाय तत, सतगुरु साहस धीर।
निपजी में साझी घना, बाँटनहार कबीर ॥५०॥
कबीर बादल प्रेम को, हम पर बरस्यो आय।
अंतर भींजी आत्मा, हरो भयो बनराय ॥५१॥
सतगुरु के सदके[3] किया, दिल अपने को साच।
कलजुग हम से लरि परा, मुहकम[4] मेरा बाँच ॥५२॥
साचे गुरु की पच्छ में, मन को दे ठहराय।
चंचल तें निःचल भया, नहिं आवे नहिं जाय ॥५३॥
भली भई जो गुरु मिलै, नातर होती हान।
दीपक जोति पतंग ज्यों, परता आय निदान ॥५४॥
भली भई जो गुरु मिले, जा तें पाया ज्ञान।
घटही माहिं चबूतरा, घटही माहिं दिवान ॥५५॥
गुरु मिला तब जानिये, मिटै मोह तन ताप।
हर्ष सोक ब्यापे नहीं, तब गुरु आपे आप ॥५६॥
गुरू तुम्हारा कहाँ है चेला कहाँ रहाय।
क्यों करिके मिलना भया, क्यों बिछुड़े आवे जाय ॥५७॥
गुरू हमारा गगन में, चला है चित माहिं।
सुरत सबद मेला भया, बिछुड़त कबहूँ नाहिं ॥५८॥
बस्तु कहीं ढूँढ़ै कहीं, केहि बिधि आवै हाथ।
कहै कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजे साथ ॥५९॥
भेदी लीन्हा साथ कर, दीन्ही बस्तु लखाय।
कोटि जनम का पंथ था, पल में पहुँचा जाय ॥६०॥

(१) स्थिति यानी ठहराव। (२) बनिज किया या लादा। (३) न्योछावर। (४) प...

जल परमानै माछरी, कुल परभावै बुद्धि।
जा को जैसा गुरु मिलै, ता को तैसी सुद्धि ॥६१॥
यह तन बिष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलं, तो भी सस्ता जान ॥६२॥
चेतन चौकी बैठ करि, सतगुरु दीन्ही धीर।
निरभय है निःसंक भजु, केवल नाम कबीर ॥६३॥
बहे बहाये जात थे, लोक बेद के साथ।
पैंड़े में सतगुरु मिले, दीपक दीन्हा हाथ ॥६४॥
दीपक दीन्हा तेल भरि, बाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहना[1], बहुरि न आवै हट्ट[2] ॥६५॥
चौपड़ माड़ी चौहटे, सारी[3] किया सरीर।
सतगुरु दाँव बताइया, खेलै दास कबीर ॥६६॥
ऐसा कोई ना मिला, सत्त नाम का मीत।
तन मन सौंपै मिरग ज्यों, सुनै बधिक का गीत ॥६७॥
ऐसे तो सतगुरु मिले, जिन से रहिये लाग।
सब ही जग सीतल भया, जब मिटी आपनी आग ॥६८॥
सतगुरु हम से रीझि के, एक कहा परसंग।
बरसा बादल प्रेम का, भींजि गया सब अंग ॥६९॥
सतगुरु के उपदेस का, सुनियो एक बिचार।
जो सतगुरु मिलता नहीं, जाता जम के द्वार ॥७०॥
जम द्वारे पर दूत सब, करते खींचा तान।
तिन तें कबहुँ न छूटता, फिरता चारो खानि ॥७१॥
चार खानि में भरमता, कबहुँ न लहता पार।
सो तो फेरा मिटि गया, सतगुरु के उपकार ॥७२॥
जरा[4] मीच[5] ब्यापै नहीं, मुवा न सुनिये कोय।
चलु कबीर वा देस में, जहँ बैदा सतगुरु होय ॥७३॥

(१) खरीदारी। (२) बाज़ार। (३) पासा। (४) वृद्ध अवस्था। (५) मौत।

काल के माथे पाँव दे, सतगुरु के उपदेस ।
साहिब अंक[1] पसारिया, लै चला अपने देस ॥७४॥
सतगुरु साचा सूरमा, सबद जो बाहा[2] एक ।
लागत ही भय मिटि गया, पड़ा कलेजे छेक ॥७५॥
सतगुरु साचा सूरमा, नख सिख मारा पूर ।
बाहर घाव न दीसई भीतर चकनाचूर ॥७६॥
सतगुरु सबद कमान करि, बाहन लागा तीर ।
एक जो बाहा प्रेम से, भीतर बिधा सरीर ॥७७॥
सतगुरु बाहा बान भरि, धर कर सूधी मूठ ।
अंग उघारे लागिया, गया धुवाँ सा फूट ॥७८॥
सतगुरु मेरा सूरमा, बेधा सकल सरीर ।
बान धुवाँ सा फूटिया, क्यों जीवे दास कबीर ॥७९॥
सतगुरु मारा बान भरि, निरखि निरखि निज ठौर ।
नाम अकेला रहि गया, चित्त न आवै और ॥८०॥
कर कमान सर साधि के, खैंचि जो मारा माहिं ।
भीतर बिंधै सो मरि रहै, जिवै पै जीवै नाहिं ॥८१॥
जबही मारा खैंचि के, तब मैं मूआ जानि ।
लगी चोट जो सबद की, गई कलेजे छानि ॥८२॥
सतगुरु मारा बान भरि, डोला नाहिं सरीर ।
कहु चुम्बक क्या करि सकै, सुख लागे वोहि तीर ॥८३॥
सतगुरु मारा तान कर, सबद सुरंगी बान ।
मेरा मारा फिर जिये, तो हाथ न गहूँ कमान ॥८४॥
ज्ञान कमान औ लव गुना[3], तन तरकस मन तीर ।
भलका[4] बहै तत सार का, मारा हदफ[5] कबीर ॥८५॥

---

(१) अँकवार भरी दोनों हाथ । (२) चलाया । (३) कमान का डोर । (४) गाँसी । (५) निशाना ।

कड़ी कमान कबीर की, धरी रहै चौगान ।
केते जोधा पचि गये, खींचैं संत सुजान ॥८६॥

लागी गाँसी सुख भया, मरै न जीवै कोय ।
कहै कबीर सो अमर भै, जीवत मिर्तक होय ॥८७॥

हँसै न बोलै उनमुनी, चंचल मेला मार[1] ।
कबीर अंतर भेधिया, सतगुरु का हथियार ॥८८॥

गूँगा हूआ बावरा, बहिरा हूआ कान ।
पाँयन से पँगुला हुआ, सतगुरु मारा बान ॥८९॥

सतगुरु मारा बान भरि, टूटि गया सब जेब[2] ।
कहुँ आपा कहुँ आपदा, तसबी कहूँ कितेब ॥९०॥

सतगुरु मारा प्रेम से, रही कटारी टूट ।
वैसी अनी न सालही, जैसी सालै मूठ[3] ॥९१॥

सतगुरु मारा बान भरि, निरखि निरखि निज ठौर ।
अलख नाम में रमि रहा, चित्त न आवै और ॥९२॥

मान बड़ाई ऊरमी[4], ये जग का ब्यवहार ।
दास गरीबी बंदगी, सतगुरु का उपकार ॥९३॥

दिल ही में दीदार है, बाद बहै संसार ।
सतगुरु सबद का मस्कला, मोहिं दिखावनहार ॥९४॥

दीसे है सो बिनसिहै, नाम धरे सो जाय ।
कबीर सोई तत्त गहु, जा सतगुरु दियो बताय ॥९५॥

क़ुदरत पाई खबर से, सतगुरु दियो बताय ।
भँवरा बिलम्यो कमल से, अब कैसे उड़ि जाय ॥९६॥

सत्त नाम छोड़ूँ नहीं, सतगुरु सीख दिया ।
अबिनासी को परसि के, आतम अमर भया ॥९७॥

---

(१) चंचल यानी मन को मार के हटा दिया और उनमुनी दशा प्राप्त हुई । (२) जेबाइश, साज सामान । (३) अनी अर्थात् नोक कटारी की जो टूट कर हृदय में रह गई वह इतना कष्ट नहीं देती है जितना मूठ का बाहर रह जाना, यानी प्रेम कटारी समूची क्यों न घुस गई । (४) तरंग (मन की) ।

सतगुरु तो ऐसा मिला, ताते लोह लुहार।
कसनी दे कंचन किया, ताय लिया तत सार ॥९८॥
सतगुरु मिलि निरभय भया, रहो न दूजी आस।
जाय समाना सबद में, सत्त नाम विस्वास ॥९९॥
कबीर गुरु ने गम कही, भेद दिया अर्थाय।
सुरत कँवल के अंतरे, निराधार पद पाय ॥१००॥
कुमति कीच चेला भरा, गुरू ज्ञान जल होय।
जनम जनम का मोरचा, पल में डारै धोय ॥१०१॥
घर में घर दिखलाय दे, सो गुरु संत सुजान।
पंच सबद धुनकार धुन, बाजै गगन निसान ॥१०२॥
जाय मिल्यो परिवार में, सुख सागर के तीर।
बरन पलटि हंसा किया, सतगुरु सत्त कबीर ॥१०३॥
साचे गुरु के पच्छ में, मन को दे ठहराय।
चंचल तें निःचल भया, नहिं आवै नहिं जाय ॥१०४॥
गुरु सिकलीगर कीजिये, ज्ञान मस्कला देइ।
मन का मैल छुड़ाइ के, चित दरपन करि लेइ ॥१०५॥
गुरू बतावै साध को, साध कहै गुरु पूज।
अरस परस के खेल में, भई अगम की सूझ ॥१०६॥
चित चोखा मन निर्मला, बुधि उत्तम मति धीर।
सो धोखा बिच क्यों रहे, जेहि सतगुरु मिलै कबीर ॥१०७
चित चोखा मन निर्मला, दयावंत गम्भीर।
सोई उहवाँ बिचरई, जेहि सतगुरु मिलै कबीर ॥१०८॥
सतगुरु सत्त कबीर है, संकट पड़ा हजीर[1]।
हाथ जोरि बिनती करूँ भवसागर के तीर ॥१०९॥
कोटिन चंदा ऊगवें, सूरज कोटि हजार।

---

(१) भारी।

सतगुरु मिलिया बाहरे, दीसत घोर अँधार ॥११०॥
सतगुरु मोहिं निवानिया, दीन्हा अम्मर बोल।
सीतल आया सुगम फल, हंसा करै कलोल ॥१११॥
ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति बिस्वास।
सतगुरु मिलि एकै भया, रही न दूजी आस ॥११२॥
सतगुरु पारस के सिला, देखो सोच बिचार।
आई परोसिन लै चली, दीयो दिया सँवार ॥११३॥
जीव अधम औ कुटिल है, कबहूँ नहिं पतियाय।
ता को औगुन मेटि कै, सतगुरु होत सहाय ॥११४॥
पहिले बुरा कमाइ के, बाँधी बिष की पोट।
कोटि कर्म पल में कटे, जब आया गुरु की ओट ॥११५॥
सतगुरु बड़े सराफ हैं, परखैं खरा अरु खोट।
भवसागर तें निकारि कै, राखैं अपनी ओट ११६॥
भवसागर जल बिष भरा, मन नहिं बाँधै धीर।
सबल सनेही गुरु मिला, उतरा पार कबीर ॥११७॥
सतगुरु सबद जहाज हैं, कोइ कोइ पावै भेद।
समुँद बुन्द एकै भया, किस का करूँ निषेध ॥११८॥
सतगुरु बड़े जहाज हैं, जो कोइ बैठै आय।
पार उतारैं और को, अपनो पारस लाय ॥११९॥
बिन सतगुरु बाचै नहीं, फिरि बूड़ै भव माहिं।
भवसागर के त्रास में, सतगुरु पकरैं बाँहिं ॥१२०॥
सतगुरु मिला तो क्या भया, जो मन पाड़ी भोल[1]।
पास बस्त्र ढाँकै नहीं, क्या करै बपुरी चोल[2] ॥१२१॥
जग मूआ बिषधर[3] धरे, कहै कबीर बिचार।
जो सतगुरु को पाइया, सो जन उतरै पार ॥१२२॥

(१) मन में भूल पड़ी। (२) बिचारी चोली। (३) साँप, अर्थात् मन और माया।

॥ सोरठा ॥

बिन सतगुरु उपदेस, सुर नर मुनि नहिं निस्तरे।
ब्रह्मा बिस्नु महेस, और सकल जिव को गनै ॥१२३॥

॥ साखी ॥

केतिक पढ़ि गुनि पचि मुवा, जोग जज्ञ तप लाय।
बिन सतगुरु पावै नहीं, कोटिन करै उपाय ॥१२४॥

॥ सोरठा ॥

करहु छोड़ कुल लाज, जो सतगुरु उपदेस है।
होय तबै जिव काज, निःचय कै परतीत करु ॥१२५॥

॥ साखी ॥

अच्छर आदी जगत में, जा कर सब बिस्तार।
सतगुरु दया से पाइये, सत्त नाम निज सार ॥१२६॥

॥ सोरठा ॥

सतगुरु खोजो संत, जीव काज जो चाहहू।
मेटो भव को अंक, आवागवन निवारहू ॥१२७॥
बिनवै दोउ कर जोर, सतगुरु बंदी-छोर हैं।
पावै नाम कि डोर, जरा मरन भवजल मिटै ॥१२८॥
सत्त नाम निज सोय, जो सतगुरु दाया करैं।
और झूठ सब होय, काहे को भरमत फिरै ॥१२९॥

॥ साखी ॥

सतगुरु सरन न आवहो, फिरि फिरि होय अकाज।
जीव खोय सब जाहिंगे, काल तिहूँ पुर राज ॥१३०॥

॥ सोरठा ॥

जो सत नाम समाय, सतगुरु की परतीत कर।
जम कै अमल मिटाय, हंस जाय सतलोक कहँ ॥१३१॥
तत[1] दरसी जो होय, सो सत सार बिचारई।
पावै तत्त बिलोय, सतगुरु कै चेला सोई ॥१३२॥

---

(1) तत्व अर्थात् सार वस्तु।

जग भवसागर माहिं, कछु कैसे बूड़त तरै।
गहु सतगुरु की बाहिं, जो जल थल रच्छा करै ॥१३३॥
निज मत सतगुरु पास, जाहि पाय सब सुधि मिलै।
जग तें रहै उदास, ता कहँ क्यों नहिं खोजिये ॥१३४॥

॥ साखी ॥

यह सतगुरु उपदेस है, जो मानै परतीत।
करम भरम सब त्यागि कै, चलै सो भवजल जीति ॥१३५॥
सतगुरु तो सत भाव है, जो अस भेद बताय।
धन्य सिष्य धन भाग तेहिं, जो ऐसी सुधि पाय ॥१३६॥
जन कबीर बंदन करै, केहि बिधि कीजै सेव।
वार पार की गम नहीं, नमो नमो गुरु देव ॥१३७॥

———

झूठे गुरु का अंग

गुरू मिला न सिष मिला, लालच खेला दाव।
दोऊ बूड़े धार में, चढ़ि पाथर की नाव ॥ १ ॥
जा का गुरु है आँधरा, चेला निपट निरंध[1]।
अंधे अंधा ठेलिया, दोऊ कूप परंत ॥ २ ॥
जानंता[2] बूझा नहीं, बूझि किया नहिं गौन।
अंधे को अंधा मिला, राह बतावै कौन ॥ ३ ॥
कबीर पूरे गुरु बिना, पूरा सिष्य न होय।
गुरु लोभी सिष लालची, दूनी दाझन[3] होय ॥ ४ ॥
पूरा सतगुरु ना मिला, सुनी अधूरी सीख।
स्वाँग जती का पहिरि के, घर घर माँगै भीख ॥ ५ ॥
गुरू गुरु में भेद है, गुरू गुरु में भाव।
सोई गुरु नित बंदिये, (जो) सबद बतावै दाव ॥ ६ ॥

(१) जिसकी आँखें बिल्कुल बंद है। (२) जानकार, भेदी। (३) तपन।

कनफूका गुरु हद्द का, बेहद का गुरु और।
बेहद का गुरु जब मिलै, (तब) लहै ठिकाना ठौर ॥ ७ ॥
गुरु किया है देंह का, सतगुरु चीन्हा नाहिं।
भवसागर के जाल में, फिरि फिरि गोता खाहिं ॥ ८ ॥
जा गुरु तें भ्रम ना मिटै, भ्रांति[1] न जिव की जाय।
गुरु तो ऐसा चाहिये, देवै सबद लखाय ॥ ९ ॥
बंधे को बंधा मिलै, छूटै कौन उपाय।
कर सेवा निरबंध की, पल में लेत छुड़ाय ॥१०॥
झूठे गुरु के पच्छ को, तजत न कीजै बार।
द्वार न पावै सबद का, भटकै बारंबार ॥११॥
कबीर गुरु को गम नहीं, पाहन दिया बताय।
सिष सोधे बिन सेइया, पार न पहुँचै जाय ॥१२॥
बेड़े चढ़िया झाँझरे, भवसागर के माहिं।
जो छाड़ै तो बाचिहै, नातर बूड़ैं माहिं ॥१३॥
बात बनाई जग ठगा, मन परमोधा नाहिं।
कहै कबीर मन लै गया, लख चौरासी माहिं ॥१४॥
नीर पियावत क्या फिरै, घर घर सायर बारि[2]।
तृषावंत जो होइगा, पीवैगा झख मारि ॥१५॥
गुरुआ तो सस्ता भया, पैसा केर पचास।
राम नाम को बेचि के, करै सिष्य की आस ॥१६॥
रासि[3] पराई राखता, घर का खाया खेत।
औरन को परमोधता, मुख में परि गई रेत ॥१७॥
गुरुआ तो घर घर फिरै, दीच्छा हमरी लेहु।
कै बूड़ौ कै ऊछलौ, टका परदनी[4] देहु ॥१८॥
जा का गुरु ग्रेही[5] अहै, चेला ग्रेही होय।
कीच कीच को धोवते, दाग न छूटै कोय ॥१९॥

(१) भटक। (२) पानी (३) खलियान। (४) प्रदान=बखशिश। (५) संसारी।

गुरु नाम है ज्ञान का, सिष्य सीख ले सोइ।
ज्ञान मरजाद जाने बिना, गुरु अरु सिष्य न कोइ ॥२०॥
गुरु पूरा सिष सूरा, बाग मोरि रन पैठ।
सत्त सुकृत को चीन्हि के, एक तख्त चढ़ि बैठ ॥२१॥
जा के हिरदे गुरु नहीं, सिष साखा की भूख।
ते नर ऐसा सूखसो, ज्यों बन दाझा रूख ॥२२॥
सिष साखा बहुते किये, सतगुरु किया न मित्त।
चाले थे सतलोक को, बीचहि अटका चित्त ॥२३॥

गुरुमुख का अंग

गुरुमुख गुरु चितवत रहै, जैसे मनी भुवंग।
कहै कबीर बिसरै नहीं, यह गुरुमुख को अंग ॥ १ ॥
गुरुमुख गुरु चितवत रहै, जैसे साह दिवान।
और कबीर नहिं देखता, है वाही को ध्यान ॥ २ ॥
गुरुमुख गुरु आज्ञा चलै, छोड़ि देइ सब काम।
कहै कबीर गुरुदेव को, तुरत करै परनाम ॥ ३ ॥
उलटे सुलटे बचन कै, सिष्य न मानै दुक्ख।
कहै कबीर संसार में, सो कहिये गुरुमुक्ख ॥ ४ ॥

मनमुख का अंग

सेवक-मुखी कहावई, सेवा में दृढ़ नाहिं।
कहै कबीर सो सेवका, लख चौरासी जाहिं ॥ १ ॥
फल कारन सेवा करै, तजै न मन से काम।
कहै कबीर सेवक नहीं, चहै चौगुना दाम ॥ २ ॥
सतगुरु सबद उलंघि कै, जो सेवक कहिं जाय।
जहाँ जाय तहँ काल है, कह कबीर समुझाय ॥ ३ ॥
गुरु बिचारा क्या करै, जो सिष्ये माहीं चूक।
भावै ज्यों परमोधिये, बाँस बजाई फूँकि ॥ ४ ॥

मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझ को सौंपते, क्या लागैगा मोर॥ ५॥
तेरा तुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो मोर।
मेरा मुझ को सौंपते, जी धड़कैगा तोर॥ ६॥

॥ चौपाई ॥

गुरु से करै कपट चतुराई। सो हंसा भव भरमै आई॥ ७॥
जो सिष गुरु की निंदा करई। सूकर स्वान गर्भ में परई॥ ८॥

निगुरा का अंग

गुरु बिनु माला फेरता, गुरु बिनु करता दान।
गुरु बिनु सब निस्फल गया, बूझौ बेद पुरान॥ १॥
जो निगुरा सुमिरन करै, दिन में सौ सौ बार।
नगर नायका सत करै, जरै कौन की लार[1]॥ २॥
गर्भ जोगेसर गुरु मिला, लागा हरि की सेव[2]।
कहै कबीर बैकुंठ से, फेर दिया सुकदेव॥ ३॥
जनक बिदेहो गुरु किया, लागा हरि की सेव।
कहै कबीर बैकुंठ में, उलटि मिला सुकदेव॥ ४॥
पूरे को पूरा मिलै, पड़ै सो पूरा दाव।
निगुरा तो ऊभट[3] चलै, जब तब करै कुदाव[4]॥ ५॥
जो कामिनि परदे रहै, सुनै न गुरु मुख बात।
होइ जगत में कूकरी, फिरै उघारे गात॥ ६॥
कबीर गुरु की भक्ति बिनु, नारि कूकरी होय।
गली गली भूँसत फिरै, टूक न डारै कोय॥ ७॥
कबीर गुरु की भक्ति बिनु, राजा बिरखभ होय।
माटी लदै कुम्हार की, घास न डारै कोय॥ ८॥

---

(१) शहर की कसबी अगर सती होने का ढोंग रचै तो किस पुरुष के साथ जलै। (२) कहते हैं कि सुकदेव जी माता के गर्भ ही में कई बरस तक रह कर भगवत भजन करते रहे पर स्वर्ग में जगह पाने योग्य नहीं समझे गये जब तक कि राजा जनक को गुरु धारन नहीं किया। (३) कुराह। (४) कूद फाँद।

चौंसठ दीवा[1] जोइ के, चौदह चंदा[2] माहिं।
तेहि घर किस का चाँदना, जेहि घर सतगुरु नाहिं ॥ ९ ॥
निसि अँधियारी कारने, चौरासी लख चंद।
गुरु बिन एते उदय हैं, तहू सुदृष्टिहि मंद ॥१०॥
गगन मँडल के बीच में, तहवाँ झलकै नूर।
निगुरा महल न पावई, पहुँचैगा गुरु पूर ॥११॥

गुरु शिष्य खोज का अंग

ऐसा कोई ना मिला, हम को दे उपदेस।
भवसागर में बूड़ता, कर गहि काढ़ै केस ॥ १ ॥
ऐसा कोई ना मिला, जा से रहिये लाग।
सब जग जलता देखिया, अपनी अपनी आग ॥ २ ॥
ऐसा कोई ना मिला, घर दे अपन जराय।
पाँचो लरिका पटकि के, रहै नाम लौ लाय ॥ ३ ॥
हम घर जारा आपना, लूका लीन्हा हाथ।
वाहू का घर फूँक दूँ, जो चलै हमारे साथ ॥ ४ ॥
ऐसा कोई ना मिला, समुझै सैन सुजान।
ढोल बाजता ना सुनै, सुरति-बिहूना कान ॥ ५ ॥
ऐसा कोई ना मिला, हम को दे पहिचान।
अपना करि किरपा करै, ले उतार मैदान ॥ ६ ॥
ऐसा कोई ना मिला, जा से कहौं दुख रोय।
जा से कहिये भेद की, सो फिर बैरी होय ॥ ७ ॥
ऐसा कोई ना मिला, सब बिधि देइ बताय।
कवन मँडल में पुरुष है, जाहि रटौं लौ लाय ॥ ८ ॥
हम देखत जग जात है, जग देखत हम जाहिं।
ऐसा कोई ना मिला, पकरि छुड़ावै बाहिं ॥ ९ ॥

(१) चौंसठ जोगिनी की कला। (२) चौदह विद्या का प्रकाश।

जैसा ढूँढ़त मैं फिरौं, तैसा मिला न कोय।
ततबेता निरगुन रहित, निरगुन से रत होय ॥१०॥
सारा सूरा बहु मिले, घायल मिला न कोय।
घायल को घायल मिलै, गुरु भक्ती दृढ़ होय ॥११॥
प्रेमी ढूँढ़त मैं फिरौं, प्रेमी मिलै न कोय।
प्रेमी से प्रेमी मिलै, बिष से अमृत होय ॥१२॥
सिष तो ऐसा चाहिये, गुरु को सब कछु देय।
गुरु तो ऐसा चाहिये, सिष से कछु न लेय ॥१३॥
सर्पहिं दूध पियाइये, सोई बिष है जाय।
ऐसा कोई ना मिला, आपेही बिष खाय[1] ॥१४॥
नादी बिन्दी बहु मिले, करत कलेजे छेद।
कोइ तख्त तरे का ना मिला, जा से पूछौं भेद ॥१५॥
तख्त तरे की सो कहै, तख्त तरे का होय।
मंझ महल की को कहै, बाँका परदा सोय ॥१६॥
मंझ महल की गुरु कहै, देखा सब घर बार।
कूँची दीन्ही हाथ में, परदा दिया उघार ।१७॥
बाँका परदा खोलि के, सन्मुख ले दीदार।
बाल सनेही साँइयाँ, आदि अंत का यार ॥१८॥
पुहुपन केरी बास ज्यों, ब्यापि रहा सब ठाहिं।
बाहर कबहुँ न पाइये, पावै संतों माहिं ॥१६॥
बिरछा पूछै बीज को, बीज बृच्छ के माहिं।
जीव जो ढूँढ़ै ब्रह्म को, ब्रह्म जीव के पाहिं ॥२०॥
डाल जो ढूँढ़ै मूल को, मूल डाल के माहिं।
आप आप को सब चलै, कोइ मिलै मूल से नाहिं ॥२१॥
मूल कबीरा गहि चढ़े, फल खाये भरि पेट।
चौरासी की गम नहीं, ज्यों जाने त्यों लेट ॥२२॥

(१) अपने शिष्य के बिकारों को खींच ले।

आदि हती सब आप में, सकल हती ता माहिं।
ज्यों तरवर के बीज में, डाल पात फल छाँहिं ॥२३॥
जिन ढूँढ़ा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठि।
मैं बपुरा बूड़न डरा, रहा किनारे बैठि ॥२४॥
हेरत हेरत हेरिया, रहा कबीर हिराय।
बूंद समानी समुँद में, सो कित हेरी जाय ॥२५॥
हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराय।
समुँद समाना बुंद में, सो कित हेरा जाय ॥२६॥
बुंद समानी समुँद में, यह जानै सब कोय।
समुँद समाना बुँद में, बूझै बिरला कोय ॥२७॥
एक समाना सकल में, सकल समाना ताहि।
कबीर समाना बूझ में, तहाँ दूसरा नाहिं ॥२८॥
कबीर बैद बुलाइया, जो भावै सो लेहि।
जेहि जेहि औषध गुरु मिलै, सो सो औषधि देहि ॥२९॥

सेवक और दास का अंग

सेवक सेवा में रहै, सेवक कहिये सोय।
कहै कबीर सेवा बिना, सेवक कबहुँ न होय ॥ १ ॥
सेवक सेवा में रहै, अनत कहूँ नहिं जाय।
दुख सुख सिर ऊपर सहै, कह कबीर समुझाय ॥ २ ॥
सेवक स्वामी एक मति, जो मति में मति मिलि जाय।
चतुराई रीझैं नहीं, रीझैं मन के भाय ॥ ३ ॥
द्वार धनी के पड़ि रहै, धका धनी का खाय।
कबहुँक धनी निवाजई, जो दर छाड़ि न जाय ॥ ४ ॥
कबीर गुरु सब को चहैं, गुरु को चहै न कोय।
जब लग आस सरीर की, तब लग दास न होय ॥ ५ ॥
सेवक सेवा में रहै, सेव करै दिन रात।
कहै कबीर कुसेवका, सन्मुख ना ठहरात ॥ ६ ॥

निरबधन बंधा रहै, बंधा निरबँध होय।
करम करै करता नहीं, दास कहावै सोय॥ ७॥
गुरु समरथ सिर पर खड़े, कहा कमी तोहि दास।
ऋद्धि सिद्धि सेवा करैं, मुक्ति न छाड़ै पास॥ ८॥
दास दुखी तो हरि दुखी, आदि अंत तिहुँ काल।
पलक एक में प्रगट है, छिन में करै निहाल॥ ९॥
दात धनी याचै[1] नहीं, सेव करै दिन रात।
कहै कबीर ता सेवकहिं, काल करै नहिं घात॥१०॥
सब कछु गुरु के पास है, पइये अपने भाग।
सेवक मन से प्यार है, निसु दिन चरनन लाग॥११॥
सेवक कुत्ता गुरू का, मोतिया वा का नाँव।
डोरी लागी प्रेम की, जित खैंचै तित जाव॥१२॥
दुर दुर करैं तो बाहिरे, तू तू करैं तो जाय।
ज्यों गुरु राखैं त्यों रहै, जो देवैं सो खाय॥१३॥
दासातन हिरदे नहीं, नाम धरावै दास।
पानी के पीये बिना, कैसे मिटै पियास॥१४॥
भुक्ति मुक्ति माँगौं नहीं, भक्ति दान दे मोहिं।
और कोई याचौं नहीं, निसु दिन याचौं तोहिं॥१५॥
धरती अम्बर[2] जायँगे, बिनसैंगे कैलास।
एकमेक होइ जायँगे, तब कहाँ रहैंगे दास॥१६॥
एकम एका होन दे, बिनसन दे कैलास।
धरती अम्बर जान दे, मो में मेरे दास॥१७॥
यह मन ता को दीजिये, जो साचा सेवक होय।
सिर ऊपर आरा सहै, तहू न दूजा जोय॥१८॥
काजर केरी कोठरी, ऐसा यह संसार।
बलिहारी वा दास की, पैठि के निकसनहार॥१९॥

(१) माँगै। (२) आकाश।

काजर केरी कोठरी, काजर ही का कोट।
बलिहारी वा दास की, रहै नाम की ओट ॥२०॥
कबिरा पाँचो बलधिया[1], ऊजर ऊजर जाहिं।
बलिहारी वा दास की, पकरि जो राखै बाहिं ॥२१॥
कबीर गुरु के भावते, दूरहि तें दीसंत।
तन छीना मन अनमना[2], जग तें रूठि फिरंत ॥२२॥
अनराते सुख सोवना, राते नींद न आय।
ज्यों जल टूटे माछरी, तलफत रैन बिहाय ॥२३॥
राता राता सब कहै, अनराता कहै न कोय।
राता सोही जानिये, जा तन रक्त न होय ॥२४॥
जा घट में साईं बसै, सो क्यों छाना होय।
जतन जतन करि दाबिये, तौ उँजियारा सोय ॥२५॥
कबीर खालिक जागिया, और न जागै कोय।
कै जागै बिषया भरा, कै दास बंदगी जोय ॥२६॥
सब घट मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोय।
बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परगट होय ॥२७॥

सूरमा का अंग

गगन दमामा बाजिया, पड़त निसाने चोट।
कायर भाजै कछु नहीं, सूरा भाजै खोट ॥ १ ॥
गगन दमामा बाजिया, पड़त निसाने घाव।
खेत पुकारै सूरमा, अब लड़ने का दाँव ॥ २ ॥
गगन दमामा बाजिया, हनहनिया[3] के कान।
सूरा धरै बधावना, कायर तजै परान ॥ ३ ॥
सूरा सोई सराहिये, लड़ै धनी के हेत।
पुरजा पुरजा होइ रहै, तऊ न छाड़ै खेत ॥ ४ ॥

(१) बैल। (२) बेकल। (३) लड़ने वाला।

सूरा सोई सराहिये, अंग न पहिरै लोह।
जूझै सब बँद खोलि कै, छाड़ै तन का मोह ॥ ५ ॥

खेत न छाड़ै सूरमा, जूझै दो दल माहिं।
आसा जीवन मरन की, मन में आनै नाहिं ॥ ६ ॥

अब तो जूझे ही बनै, मुड़ि चाले घर दूर।
सिर साहिब को सौंपते, सोच न कीजे सूर ॥ ७ ॥

घायल तो घूमत फिरै, राखा रहै न ओट।
जतन किये नहिं बाहुरै[1], लगी मरम की चोट ॥ ८ ॥

घायल की गति और है, औरन की गति और।
प्रेम बान हिरदे लगा, रहा कबीरा ठौर ॥ ९ ॥

सूरा सीस उतारिया, छाड़ी तन की आस।
आगे से गुरु हरखिया, आवत देखा दास ॥१०॥

कबीर घोड़ा प्रेम का, (कोइ) चेतन चढ़ि असवार।
ज्ञान खड़ग लै काल सिर, भली मचाई मार ॥११॥

चित चेतन ताजी[2] करै, लव को करै लगाम।
सबद गुरू का ताजना[3], पहुँचै संत सुठाम ॥१२॥

कबीर तुरी पलानिये, चाबुक लीजे हाथ।
दिवस थके साइं मिलै, पीछे पड़सी रात ॥१३॥

हरि घोड़ा ब्रह्मा कड़ी, बिस्नू पीठ पलान।
चंद सूर दोय पायड़ा[4], चढ़सी संत सुजान ॥१४॥

साध सती औ सूरमा, इनकी बात अगाध।
आसा छोड़ै देह की, तिन में अधिका साध ॥१५॥

साध सती औ सूरमा, इन पटतर कोइ नाहिं।
अगम पंथ को पग धरैं, डिगैं तो ठाहर[5] नाहिं ॥१६॥

---

(१) मुड़ै। (२) घोड़ा। (३) ताज़ियाना = कोड़ा। (४) रकाब। (५) ठिकाना।

साध सती औ सूरमा, कबहुँ न फेरैं पीठ।
तीनों निकसि जो बाहुरैं, ता को मुँह मति दीठ ॥१७॥
साध सती औ सूरमा, ज्ञानी औ गज दंत।
एते निकसि न बाहुरैं, जो जुग जाहिं अनंत ॥१८॥
साध सती औ सूरमा, दई न मोड़ मूँह।
ये तीनों भागे बुरे, साहिब जा की सूँह[1] ॥१९॥
सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की, कटि उँजियारा होय ॥२०॥
धड़ से सीस उतारि कै, डारि देइ ज्यों ढेल।
कोई सूर को सोहसी, घर जाने का खेल ॥२१॥
लड़ने को सबही चले, सस्तर बाँधि अनेक।
साहिब आगे आपने, जूझैगा कोइ एक ॥२२॥
जूझैंगे तब कहेंगे, अब कछु कहा न जाय।
भीड़ पड़े मन मसखरा, लड़ै किधौं भगि जाय ॥२३॥
सूरा के मैदान में, कायर फंदा[2] आय।
ना भाजै ना लड़ि सकै, मनहीं मन पछिताय ॥२४॥
कायर बहुत पमावही[3], बड़क[4] न बोलै सर।
सारी खलक यों जानही, केहि के मोहड़े नूर ॥२५॥
सूरा थोड़ा ही भला, सत करि रोपै पग्ग[5]।
घना मिला केहि काम का, सावन का सा बग्ग[6] ॥२६॥
रनहिं धसा जो ऊबरा, आगे गिरह निवास।
घरै बधावा बाजिया, और न दूजी आस ॥२७॥
साइँ सेंति[7] न पाइये, बातन मिलै न कोय।
कबीर सौदा नाम का, सिर बिन कबहुँ न होय ॥२८॥

(१) सन्मुख। (२) फँस पड़ा। (३) डींग मारता है। (४) बढ़ कर। (५) पैर। (६) बगीचा जो सावन के महीने यानी बरसात में घना हो जाता है और फिर जैसे का तैसा। (७) मुफ्त।

अप्प स्वारथी मेदिना[१], भक्ति स्वारथी दास।
कबीर नाम स्वारथी, छाड़ी तन की आस ॥२६॥
ज्यों ज्यों गुरु गुन[२] साँभलै[३], त्यों त्यों लागै तीर।
लागे से भागै नहीं, सोई साध सुधीर ॥३०॥
ऊँचा तरवर गगन को, फल निरमल अति दूर।
अनेक सयाने पचि गये, पथहिं मूए झूर[४] ॥३१॥
दूर भया तो क्या भया, सतगुरु मेला सोय[५]।
सिर सौंपे उन चरन में, कारज सिद्धी होय ॥३२॥
जेता तारा रैन का, पता बैरी मुज्झ।
धड़ सूली सिर कंगुरे[६], तउ न बिसारूँ तुज्झ ॥३३॥
चौपड़ माँड़ी चौहटे, अरध उरध बाजार।
सतगुरु सेती खेलता, कबहुँ न आवै हार ॥३४॥
जो हारौं तो सेव गुरु, जो जीतौं तो दाँव।
सत्तनाम से खेलता, जो सिर जाव तो जाव ॥३५॥
खोजी को डर बहुत है, पल पल पड़ै बिजोग।
प्रन राखत जो तन गिरै, सो तन साहिब जोग ॥३६॥
अगिनि आँच सहना सुगम, सुगम खड़ग की धार।
नेह निभावन एक रस, महा कठिन ब्योहार ॥३७॥
नेह निभाये ही बनै, सोचे बनै न आन।
तन दे मन दे सीस दे, नेह न दीजै जान ॥३८॥

---

(१) पृथ्वी पानी को चाहती है। (२) धनुष की डोर या रोदा। (३) खिचे। (४) रास्ते ही में खाली अटक रहे। (५) जिसको पूरे सतगुरु मिले हैं। (६) अगले समय में शत्रु को सूली पर चढ़ा कर उसका सिर काट लिया करते थे और कँगूरे पर लगा देते थे।

भाव भालका[1] सुरति सर[2], धरि धीरज कर[3] तान।
मन की मूठ जहाँ मँड़ी, चोट तहाँ हीं जान ॥३६॥

मेरे संसय कछु नहीं, लागा गुरु से हेत।
काम क्रोध से जूझना, चौड़े[4] माँड़ा खेत ॥४०॥

कायर भया न छूटि हौ, कछु सूरता समाय।
भरम भालका दूर करि, सुमिरन सील मँझाय ॥४१॥

कोने परा ना छूटि हौ, सुनु रे जीव अबूझ।
कबिरा मँड़ मैदान में, करि इंद्रिन से जूझ ॥४२॥

बाँका गढ़ बाँका मता, बाँकी गढ़ की पौल[5]।
काढ़ि कबीरा नीकला, जम सिर घाली रौल[6] ॥४३॥

बाँकी तेग[7] कबीर की, अनी पड़ै दुइ टूक।
मारा मीर महाबली, ऐसी मूठ अचूक ॥४४॥

कबीर तोड़ा मान गढ़, पकड़े पाँचो स्वान[8]।
ज्ञान कुहाड़ा[9] कर्म बन, काटि किया मैदान ॥४५॥

कबीर तोड़ा मान गढ़, मारे पाँच गनीम[10]।
सीस नवाया धनी को, साजी बड़ी मुहीम[11] ॥४६॥

कबीर पाँचो मारिये, जा मारे सुख होय।
भला भली सब कोइ कहै, बुरा न कहसी कोय ॥४७॥

ऐसी मार कबीर की, मुवा न दीसै कोय।
कह कबीर सोइ ऊबरे, धड़ पर सीस न होय ॥४८॥

सूरा सार सँभालिया, पहिरा सहज सँजोग।
ज्ञान गजंदा[12] चढ़ि चला, खेत पड़न का जोग[13] ॥४६॥

---

(१) गाँसी। (२) तीर। (३) हाथ। (४) मैदान में। (५) रास्ता। (६) खलबली। (७) तलवार। (८) पाँचो कुत्ते। (६) कुल्हाड़ा। (१०) दुशमन—काम क्रोध लोभ मोह अहंकार। (११) मुहिम या लड़ाई। (१२) हाथी। (१३) शुभ घड़ी।

सीतलता संजोय लै, सूर चढ़े संग्राम।
अब की भाज न सरत है, सिर साहिब के काम ॥५०॥
सूरा नाम धराइ के, अब का डरपै बीर।
मँड़ि रहना मैदान में, सन्मुख सहना तीर ॥५१॥
तीर तुपक[1] से जो लड़ैं, सो तो सूर न होय।
माया तजि भक्ती करै, सूर कहावै सोय ॥५२॥
कबीर सोई सूरमा, मन से माँड़ै जूझ।
पाँचो इंद्री पकरि कै, दूरि करै सब दूझ ॥५३॥
कबीर सोई सूरमा, जा के पाँचो हाथ।
जा के पाँचो बस नहीं, तेहिं गुरु संग न साथ ॥५४॥
कबीर रन में पैठि के, पीछे रहै न सूर।
साईं से सनमुख भया, रहसी सदा हजूर ॥५५॥
जाय पूछ वा घायलै, पीर दिवस निसि जागि।
बाहनहारा जानि है, कै जानै जेहिं लागि ॥५६॥
कबीर हीरा बनिजिया, महँगे मोल अपार।
हाड़ गला माटी मिली, सिर साटे ब्योहार ॥५७॥
भागे भलो न होयगो, कहाँ धरोगे पाँव।
सिर सौंपो सीधे लड़ो, काहे करो कुदाव ॥५८॥
सूर सिलाह[2] न पहिरई, जब रन बाजा तूर।
माथा काटे धड़ लड़ै, तब जानीजे सूर ॥५९॥
जोग से तो जौहर[3] भला, घड़ी एक का काम।
आठ पहर का जूझना, बिन खाँड़े संग्राम ॥६०॥

(१) बन्दूक। (२) लड़ाई के हथियार, ढाल तलवार। (३) आत्म-घात, खुद-कुशी।

तीर तुपक बरछी बहै, बिगसि जायगा चाम।
सूरा के मैदान में, कायर का क्या काम ॥६१॥
सूरा के मैदान में, कायर का क्या काम।
सूरा से सूरा मिलै, तब पूरा संग्राम ॥६२॥
बिना पाँव का पंथ है, मंझि सहर अस्थान।
बिकट बाट औघट घना, कोइ पहुँचै संत सुजान ॥६३॥
पंज असमाना जब लिया, तब रन धसिया सूर।
दिल सौंपा सिर ऊबरा, मुजरा धनी हजूर ॥६४॥
रन धसिया ते ऊबरा, पाया गेह निवास।
घरे बधावा बाजिया, औ जीवन की आस ॥६५॥
जब लगि धड़ पर सीस है, सूर कहावै कोय।
माथा टूटै धड़ लड़ै, कमँद[1] कहावे सोय ॥६६॥
सूरा तो साचे मते, सहै जो सन्मुख धार।
कायर अनी चुभाइ कै, पाछे झँखै अपार ॥६७॥
भाजि कहाँ लौ जाइये, भय भारी घर दूर।
बहुरि कबीरा खेत रहु, दल आया भर पूर ॥६८॥
सार बहै लोहा झरै, टूटै जिरह[2] जंजीर।
अबिनासी की फौज में, माँड़ा दास कबीर ॥६९॥
ज्ञान कमाना[3] लौ गुना[4], तन तरकस मन तीर।
झलका बहता सार का, मारै हदफ[5] कबीर ॥७०॥
कठिन कमान कबीर की, पड़ी रहै मैदान।
केते जोधा पचि गये, कोइ खैंचै संत सुजान ॥७१॥

---

(१) एक राक्षस जिसका सिर गदा की मार से धड़ के भीतर घुस गया था लेकिन फिर भी वह बराबर लड़ता था; बिना सीस का जोधा। (२) बकतर। (३) धनुष। (४) डोरी। (५) निशाना।

घटी बढ़ी जानै नहीं, मन में राखै जीत।
गाडर[1] लड़ै गजंद सा, देखो उलटी रीत ॥७२॥
धुजा फरक्कै सुन्न में, बाजे अनहद तूर।
तकिया है मैदान में, पहुँचैगा कोइ सूर ॥७३॥
नाम रसायन प्रेम रस, पीवत बहुत रसाल।
कबीर पीवन कठिन है, माँगै सीस कलाल ॥७४॥
कायर भागा पीठ दै, सूर रहा रन माहिं।
पटा लिखाया गुरू पै, खरा खजीना खाहि ॥७५॥
कायर सेरी[2] ताकवै, सूरा माँड़ै[3] पाँव।
सीस जीव दोऊ दिया, पीठ न आया घाव ॥७६॥

पतिव्रता का अंग

पतिबरता को सुख घना, जा के पति है एक।
मन मैली बिभिचारिनी, ता के खसम अनेक ॥ १ ॥
पतिबरता मैली भली, काली कुचिल कुरूप।
पतिबरता के रूप पर, वारौं कोटि सरूप ॥ २ ॥
पतिबरता पति को भजै, और न आन सुहाय।
सिंह बचा जो लंघना, तौ भी घास ना खाय ॥ ३ ॥
नैनों अंतर आव तू, नैन झाँपि तोहि लेवँ।
ना मैं देखौं और को, ना तोहि देखन देवँ ॥ ४ ॥
कबीर सीप समुद्र की, रटै पियास पियास।
और बूँद को ना गहै, स्वाँति बूँद की आस ॥ ५ ॥
पपिहा का पन देखि करि, धीरज रहै न रंच।
मरते दम जल में पड़ा, तऊ ना बोरी चंच[4] ॥ ६ ॥
मैं सेवक समरत्थ का, कबहुँ ना होय अकाज।
पतिबरता नाँगी रहै, तो वाही पति को लाज ॥ ७ ॥

(१) भेड़। (२) रास्ता भागने का। (३) जमावै। (४) चोंच।

मैं सेवक समरत्थ का, कोई पुरबला भाग।
सोती जागी सुंदरी, साईं दिया सुहाग ॥ ८ ॥
पतिबरता के एक तू, और न दूजा कोय।
आठ पहर निरखत रहै, सोई सुहागिन होय ॥ ९ ॥
इक चित होय न पिय मिलै, पतिब्रत ना आवै।
चंचल मन चहुँ दिस फिरै, पिय कैसे पावै ॥१०॥
सुंदर तो साईं भजै, तजै आन की आस।
ताहि ना कबहूँ परिहरै, पलक ना छाड़ै पास ॥११॥
चढ़ी अखाड़े सुंदरी, माँड़ा पिउ से खेल।
दीपक जोया ज्ञान का, काम जरै ज्यों तेल ॥१२॥
सूरा के तो सिर नहीं, दाता के धन नाहिं।
पतिबरता के तन नहीं, सुरत बसै पिउ माहिं ॥१३॥
दाता के तो धन घना, सूरा के सिर बीस।
पतिबरता के तन सही, पत राखै जगदीस ॥१४॥
पतिबरता मैली भली, गले काँच को पोत।
सब सखियन में यों दिपै, ज्यों रबि ससि की जोत ॥१५॥
पतिबरता पति को भजै, पति पर धरि बिस्वास।
आन दिसा को नहीं, सदा पीव की आस ॥१६॥
पतिबरता बिभिचारिनी, एक मँदिर में बास।
वह रँग-राती पीव के, यह घर घर फिरै उदास ॥१७॥
नाम न रटा तो क्या हुआ, जो अंतर है हेत।
पतिबरता पति को भजै, मुख से नाम न लेत ॥१८॥
सुरत समानी नाम में, नाम किया परकास।
पतिबरता पति को मिली, पलक ना छाड़ै पास ॥१९॥

साइँ मोर सुलच्छना, मैं पतिबरता नार।
द्यो दीदार दया करो, मेरे निज भरतार ॥२०॥
जो यह एक न जानिया, तो बहु जाने का होय।
एकै तें सब होत हैं, सब तें एक न होय ॥२१॥
जो यह एकै जानिया, तो जानो सब जान।
जो यह एक न जानिया, तो सबही जान अजान ॥२२॥
सब आये उस एक में, डार पात फल फूल।
अब कहो पाछे क्या रहा, गहि पकड़ा जब मूल ॥२३॥
प्रीति अड़ी है तुज्झ से, बहु गुनियाला कंत।
जो हँस बोलौं और से, नील रँगाओं दंत ॥२४॥
कबीर रेख सिंदूर अरु, काजर दिया न जाय।
नैनन प्रीतम रमि रहा, दूजा कहाँ समाय ॥२५॥
आठ पहर चौंसठ घड़ी, मेरे और न कोय।
नैना माहीं तू बसै, नींद को ठौर न होय ॥२६॥
मेरा साईं एक तू, दूजा और न कोय।
दूजा साईं तौ करौं, जो कुल दूजो होय ॥२७॥
पतिबरता तब जानिये, रतिउ[1] न उघरै नैन।
अंतरगत सकुची रहै, बोलै मधुरे बैन ॥२८॥
भोरै भूली खसम को, कबहुँ न किया बिचार।
सतगुरु आन बताइया, पूरबला भरतार ॥२९॥
जो गावै सो गावना, जो जोड़ै सो जोड़।
पतिबरता साधू जना, यहि कलि में हैं थोड़ ॥३०॥
पतिबरता ऐसे रहै, जैसे चोली पान[2]।
तब सुख देखै पीव का, चित्त न आवै आन ॥३१॥

---

(१) रत्ती भर भो। (२) चोली की दोनों टुक्कियों पर पान बना देते हैं।

मैं अबला पिउ पिउ करौं, निरगुन मेरा पीव।
सुन्न सनेही गुरू बिनु, और न देखौं जीव ॥३२॥

सती का अंग

अब तो ऐसी है परी, मन अति निर्मल कीन्ह।
मरने का भय छाड़ि के, हाथ सिंधोरा लीन्ह ॥ १ ॥

ढोल दमामा बाजिया, सबद सुना सब कोय।
जो सर[1] देखि सती भगै, को कुल हाँसी होय ॥ २ ॥

सती जरन को नीकसी, चित धरि एक बिबेक।
तन मन सौंपा पीव को, अंतर रही न रेख ॥ ३ ॥

सती जरन को नीकसी, पिउ का सुमिरि सनेह।
सबद सुनत जिय नीकसा, भूलि गई निज देह ॥ ४ ॥

सती बिचारी सत किया, काँटों सेज बिछाय।
लै सूती पिय आपना, चहुँ दिस अगिनि लगाय ॥ ५ ॥

सती न पीसै पीसना, जो पीसै सो राँड़।
साधू भीख न माँगई, जो माँगै सो भाँड़ ॥ ६ ॥

हौं तोहि पूछौं हे सखी, जीवत क्यों न जराय।
मूए पीछे सत करै, जीवत क्यों न कराय ॥ ७ ॥

बिभिचारिन का अंग

नारि कहावै पीव की, रहै और सँग सोय।
जार सदा मन में बसै, खसम खुसी क्यों होय ॥ १ ॥

सेज बिछावै सुन्दरी, अंतर परदा होय।
तन सौंपै मन दे नहीं, सदा सुहागिन सोय ॥ २ ॥

कबीर मन दीया नहीं, तन करि डारा जेर।
अंतरजामी लखि गया, बात कहन का फेर ॥ ३ ॥

---

(१) अगिन।

नवसत[1] साजे सुन्दरी, तन मन रही सँजोय।
पिय के मन मानै नहीं, (तो) बिडँब[2] किये क्या होय ॥ ४ ॥
मुख से नाम रटा करै, निसु दिन साधन संग।
कहु धौं कौन कुफेर से, नाहिन लागत रंग ॥ ५ ॥
मन दीया कहि औरही, तन साधन के संग।
कह कबीर कोरी गजी, कैसे लागै रंग ॥ ६ ॥
रात जगावै राँड़िया, गावै बिषया गीत।
मारै लौंदा लापसी, गुरू न लावै चीत ॥ ७ ॥
बिभिचारिन बिभिचार में, आठ पहर हुसियार।
कह कबीर परिबर्त बिन, क्यों रीझै भरतार ॥ ८ ॥
कबीर जो कोइ सुन्दरी, जानि करै बिभिचार।
ताहि न कबहुँ आदरै, परम पुरुष भरतार ॥ ९ ॥
बिभिचारिन के बस नहीं, अपनो तन मन सोय।
कह कबीर पतिबर्त बिन, नारी गई बिगोय ॥१०॥
कबीर या जग आइ के, कीया बहुतक मिंत[3]।
जिन दिल बाँधा एक से, ते सोवै निःचिंत ॥११॥

भक्ति का अंग

कबीर गुरु की भक्ति करु, तजि बिषया रस चौज।
बार बार नहिं पाइहै, मानुष जन्म की मौज ॥ १ ॥
भक्ति बीज बिनसै नहीं, आइ पड़ै जो चोल[4]।
कंचन जो बिष्टा पड़ै, घटै न ता को मोल ॥ २ ॥
गुरु भक्ती अति कठिन है, ज्यों खाँड़े की धार।
बिना साच पहुँचै नहीं, महा कठिन ब्योहार ॥ ३ ॥
भक्ति दुहेली[5] गुरू की, नहिं कायर का काम।
सीस उतारै हाथ से, सो लेसी सतनाम ॥ ४ ॥

(१) नौ और सात—सोलह (सिंगार)। (२) बाहरी सजाव। (३) मित्र। (४) चाहे जैसे नीच ऊँच चोले या योनि में जीव आ पड़ै। (५) कठिन।

भक्ति दुहेली नाम की, जस खाँड़े की धार ।
जो डोलै तो कटि परै, निःचल उतरै पार ॥ ५ ॥
कबीर गुरु की भक्ति का, मन में बहुत हुलास ।
मन मनसा माँजे नहीं, होन चहत है दास ॥ ६ ॥
हरष बड़ाई देख करि, भक्ति करै संसार ।
जब देखै कछु हीनता, औगुन धरैं गंवार ॥ ७ ॥
भक्ति निसेनी[1] मुक्ति की, संत चढ़े सब धाय ।
जिन जिन मन आलस किया, जनम जनम पछिताय ॥ ८ ॥
भक्ति बिना नहिं निस्तरै, लाख करै जो कोय ।
सबद सनेही ह्वै रहै, घर को पहुँचै सोय ॥ ९ ॥
जब लग नाता जगत का, तब लग भक्ति न होय ।
नात तोड़ हरि को भजै, भक्त कहावै सोय ॥१०॥
भक्ति भ्रन तें होत है, मन दै कीजै भाव ।
परमारथ परतीत में, यह तन जाव तो जाव ॥११॥
भक्ति भेष बहु अंतरा, जैसे धरनि अकास ।
भक्त लीन गुरु चरन में, भेष जगत की आस ॥१२॥
जहाँ भक्ति तहँ भेष नहिं, बर्नास्रम तहँ नाहिं ।
नाम भक्ति जो प्रेम से, सो दुर्लभ जग माहिं ॥१३॥
भक्ति कठिन दुर्लभ महा, भेष सुगम निज सोय ।
भक्ति नियारी भेष तें, यह जानै सब कोय ॥१४॥
भक्ति पदारथ जब मिलै, जब गुरु होय सहाय ।
प्रेम प्रीति की भक्ति जो, पूरन भाग मिलाय ॥१५॥
सब से कहौं पुकारि कै, क्या पंडित क्या सेख ।
भक्ति ठानि सबदै गहै, बहुरि न काछै भेख ॥१६॥
देखा देखी भक्ति का, कबहुँ न चढ़सी रंग ।
बिपति पड़े यों छाड़सी, ज्यों केंचुली भुवंग ॥१७॥

(१) सीढ़ी।

टोटे में भक्ती करै, ता का नाम सपूत।
माया धारी मसखरे, केते ही गये ऊत ॥१८॥
देखा देखी पकड़सी, गई छिनक में छूट।
कोइ बिरला जन बाहुरे, सतगुरु स्वामी मूठ ॥१९॥
ज्ञान सँपूरन ना भिदा, हिरदा नाहिं जुड़ाय।
देखा देखी भक्ति का, रंग नहीं ठहराय ॥२०॥
प्रेम बिना जो भक्ति है, सो निज डिंभ बिचार।
उद्र भरन के कारने, जनम गँवायो सार ॥२१॥
जान भक्त का नित मरन, अनजाते का राज।
सर औसर समझै नहीं, पेट भरन से काज ॥२२॥
खेत बिगार्यो खरतुआ[1], सभा बिगारी कूर[2]।
भक्ति बिगारी लालची, ज्यों केसर में धूर ॥२३॥
तिमिर गया रबि देखते, कुबुधि गई गुरु ज्ञान।
सुगति गई इक लोभ तें, भक्ति गई अभिमान ॥२४॥
भक्ति भाव भादों नदी, सबै चलीं घहराय।
सरिया सोई सराहिये, जो जेठ मास ठहराय ॥२५॥
कामी क्रोधी लालची, इन तें भक्ति न होय।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥२६॥
भक्ति दुवारा साकरा, राई दसवें भाव[3]।
मन ऐरावत[4] ह्वै रहा, कैसे होय समाव ॥२७॥
कबीर गुरु की भक्ति बिनु, धिग जीवन संसार।
धूआँ का सा धौलहर[5], जात न लागै बार ॥२८॥
निरपच्छी को भक्ति है, निरमोही को ज्ञान।
निरदुन्दी को मुक्ति है, निरलोभी निर्बान ॥२९॥

(१) एक निकम्मी घास जो आस पास के अनाज की डाभियों को जला देती है। (२) दुष्ट। (३) राई के दसवें भाग जैसा झीना दरवाजा भक्ति का है। (४) इन्द्र का हाथी। (५) धरहरा।

भक्ति सोई जो भाव से, इकसम चित को राखि।
साच सील से खेलिये, मैं तैं दोऊ नाखि[1] ॥३०॥
सत्त नाम हल जोतिया, सुमिरन बीज जमाय।
खंड ब्रह्मंड सूखा पड़ै, भक्ति बीज नहिं जाय ॥३१॥
जल ज्यों प्यारा माछरी, लोभी प्यारा दाम।
माता प्यारा बालका, भक्त पियारा नाम ॥३२॥
कबीर गुरु की भक्ति से, संसय डारा धोय।
भक्ति बिना जो दिन गया, सो दिन सालै मोय ॥३३॥
जब लगि भक्ति सकाम है, तब लगि निस्फल सेव।
कह कबीर वह क्यों मिलै, निःकामी निज देव ॥३४॥
भक्ति पियारी नाग की, जैसी प्यारी आगि।
सारा पट्टन[2] जरि गया, बहुरि ले आवै माँगि ॥३५॥
भक्ति बीज पलटै नहीं, जो जुग जाय अनंत।
ऊँच नीच घर जन्म ले, तऊ संत का संत ॥३६॥
जाति बरन कुल खोइ के, भक्ति करै चित लाय।
कह कबीर सतगुरु मिलै, आवागवन नसाय ॥३७॥
भक्ति गेंद चोगान की, भावै कोइ लै जाय।
कह कबीर कछु भेद नहिं, कहा रंक कहा राय ॥३८॥

लव का अंग

लव लागी तब जानिये, छूटि कभूँ नहिं जाय।
जीवत लव लागी रहै, मूए तहँहिं समाय ॥ १ ॥
जब लग कथनी हम कथी, दूर रहा जगदीस।
लव लागी कल ना परै, अब बोलत न हदीस ॥ २ ॥
काया कमँडल भरि लिया, उज्जल निर्मल नीर।
पीवत तृषा न भाजही तिरषा-वंत कबीर ॥ ३ ॥

(१) डाल कर। (२) शहर।

मन उलटा दरिया मिला, लागा मलि मलि न्हान।
थाहत थाह न आवई, सो पूरा रहमान ॥ ४ ॥
गंग जमुन उर अंतरे, सहज सुन्न लव घाट।
तहाँ कबीरा मठ रचा, मुनि जन जोवैं बाट ॥ ५ ॥
जेहि बन सिंह न संचरै, पंछी उड़ि नहिं जाय।
रैन दिवस की गम नहीं, तहँ कबीर लव लाय ॥ ६ ॥
लै पावों तौं लै रहों, लैन कहूँ नहिं जाँव।
लै बूड़ै सो लै तिरै, लै लै तेरो नाँव ॥ ७ ॥
लव लागी कल ना पड़ै, आप बिसरजनि देह।
अमृत पीवै आतमा, गुरु से जुड़ै सनेह ॥ ८ ॥
जैसी लव पहिले लगी, तैसी निबहै ओर।
अपनी देह की को गिनै, तारै पुरुष करोर ॥ ९ ॥
लागी लागी क्या करै, लागी बुरी बलाय।
लागी सोई जानिये, जो वार पार होइ जाय ॥१०॥
लागी लागी क्या करै, लागी नाहीं एक।
लागी सोई जानिये, परै कलेजे छेक ॥११॥
लागी लागी क्या करै, लागी सोई सराह।
लागी तबही जानिये, उठै कराह कराह ॥१२॥
लगी लगन छूटै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठा कहा अँगार में, जाहि चकोर चबाय ॥१३॥
चकोर भरोसे चंद के, निगलै तप्त अँगार।
कह कबीर छाड़ै नहीं, ऐसी वस्तु लगार[1] ॥१४॥
जो तू पिय की प्यारिनी, अपना करि ले री।
कलह कल्पना मेटि कै, चरनों चित दे री ॥१५॥
और सुरन बिसरी सकल, लव लागी रहे संग।
आव जाव का से कहौं, मन राता गुरु रंग ॥१६॥

(१) लगन या प्रीत।

ग्रंथ माहिं पाया अरथ, अरथे माहीं मूल ।
लव लागी निर्मल भया, मिटि गया संसय सूल ॥१७॥
सोवौं तो सुपने मिलै, जागौं तो मन माहिं ।
लोयन[1] राता सुधि हरी, बिछुरत कबहूँ नाहिं ॥१८॥
तूँ तूँ करता तूँ भया, तुझ में रहा समाय ।
तुझ माहीं मन मिलि रहा, अब कहुँ अनत न जाय ॥१९॥

बिरह का अंग

बिरहिनि देइ सँदेसरा, सुनो हमारे पीव ।
जल बिन मच्छी क्यों जिये, पानी में का जीव ॥ १ ॥
बिरह तेज तन में तपै, अंग सबै अकुलाय ।
घट सूना जिव पीव में, मौत ढूँढ़ि फिर जाय ॥ २ ॥
बिरह जलन्ती देखि कर, साईं आये धाय ।
प्रेम बूँद से छिरकि के, जलती लई बुझाय ॥ ३ ॥
अँखियन तो झाँईं परी, पंथ निहार निहार ।
जिभ्या तो छाला परा, नाम पुकार पुकार ॥ ४ ॥
नैनन तो झरि लाइया, रहट बहै निसु बास ।
पपिहा ज्यों पिउ पिउ रटै, पिया मिलन की आस ॥ ५ ॥
बिरह बड़ो बैरी भयो, हिरदा धरै न धीर ।
सुरत-सनेही ना मिलै तब लगि मिटै न पीर ॥ ६ ॥
बिरहिन ऊभी पंथ सिर, पंथिनि पूछै धाय[2] ।
एक सबद कहु पीव का, कब रे मिलैंगे आय ॥ ७ ॥
बहुत दिनन की जोवती, रटत तुम्हारो नाम ।
जिव तरसै तुव मिलन को, मन नाहीं बिस्राम ॥ ८ ॥
बिरह भुवंगम[3] तन डसा, मंत्र न लागै कोय ।
नाम बियोगी ना जियै, जियै तो बाउर[4] होय ॥ ९ ॥

(१) आँख । (२) बिरहिन रास्ते में खड़ी होकर बटोही से पूछती है । (३) साँप । (४) बौड़हा ।

बिरह भुवंगम पैठि के, किया कलेजे घाव।
बिरहिन अंग न मोड़िहै, ज्यों भावै त्यों खाव ॥१०॥
बिरहा पीव पठाइया, कहि साधू परमोधि[1]।
जा घट तालाबेलिया[2], ता को लावो सोधि ॥११॥
कबीर सुन्दरि यों कहै, सुनिये कंत सुजान।
बेगि मिलो तुम आइ के, नहीं तो तजिहौं प्रान ॥१२॥
कै बिरहिन को मीच दे, कै आपा दिखलाय।
आठ पहर का दाझना, मो पै सहा न जाय ॥१३॥
बिरह कमंडल कर लिये, बैरागी दो नैन।
माँगैं दरस मधूकरी, छके रहैं दिन रैन ॥१४॥
येहि तन का दिवला करौं, बाती मेलौं जीव।
लोहू सींचौं तेल ज्यों, कब मुख देखौं पीव ॥१५॥
कबीर हँसना दूर करु, रोने से करु चीत।
बिन रोये क्यों पाइये, प्रेम पियारा मीत ॥१६॥
हँसो तो दुख ना बीसरै, रोओं बल घटि जाय।
मनहीं माहीं बिसुरना, ज्यों घुन काठहिं खाय ॥१७॥
कीड़े काठ जो खाइया, खात किनहुँ नहिं दीठ।
छाल उपारि[3] जो देखिया, भीतर जमिया चीठ[4] ॥१८॥
हँस हँस कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय।
हाँसी खेले पिय मिलैं, तो कौन दुहागिनि होय ॥१९॥
सुखिया सब संसार है, खावै औ सोवै।
दुखिया दास कबीर है, जागै औ रोवै ॥२०॥
नाम बियोगी बिकल तन, ताहि न चीन्है कोय।
तम्बोली का पान ज्यों, दिन दिन पीला होय ॥२१॥
नैन हमारे बावरे, छिन छिन लोड़ैं[5] तुज्झ।

---

(१) शान्ति देना। (२) व्याकुलता। (३) उखाड़ कर। (४) लकड़ी का चूरा या बुरादा। (५) चाहैं।

ना तुम मिलो न मैं सुखी, ऐसी बेदन मुज्झ ॥२२॥
माँस गया पिंजर रहा, ताकन लागे काग।
साहिब अजहुँ न आइया, मंद हमारे भाग ॥२३॥
बिरहा सेती मति अड़ै, रे मन मोर सुजान।
हाड़ मास सब खात है, जीवन करै मसान ॥२४॥
अंदेसो नहिं भागसी, संदेसो कहि आय।
कै आवै पिय आपही, कै मोहिं पास बुलाय ॥२५॥
आय सकों नहिं तोहिं पै, सकों न तुज्झ बुलाय।
जियरा यों लय होयगा, बिरह तपाय तपाय ॥२६॥
अँखियाँ प्रेम बसाइया, जनि जाने दुखदाय।
नाम सनेही कारने, रो रो रात बिताय ॥२७॥
जोई आँसू सजन जन, सोई लोक बहारि।
जो लोचन लोहू चुवै, तौ जानौं हेतु हियाहि ॥२८॥
हवस करै पिय मिलन की, औ सुख चाहै अंग।
पीड़ सहे बिनु पदमिनी, पून न लेत उछंग[1] ॥२९॥
बिरहिनि ओदी लाकड़ी, सपने औ धुँधुआय।
छूट पड़ों या बिरह से, जो सिगरो जरि जाय ॥३०॥
तन मन जोबन यों जला, बिरह अगिनि से लागि।
मिर्तक पीड़ा जानही, जानैगी क्या आगि ॥३१॥
फाड़ि पटोली[2] धुज करों, कामलडी[3] फहराय।
जेहिं जेहिं भेष पिय मिलै, सोइ सोइ भेष कराय ॥३२॥
परबत परबत मैं फिरी, नैन गँवायो रोय।
सो बूटी पायों नहीं, जा तें जीवन होय ॥३३॥
बिरह जलन्ती मैं फिरों, मो बिरहिनि को दुक्ख।
छाँह न बैठों डरपती, मत जलि उठै रुक्ख[4] ॥३४॥

(१) उत्साह से। (२) दुपट्टा। (३) कमरी यानी छोटा कम्बल। (४) पेड़।

चूड़ी पटकों पलँग से, चोली लाओं आगि।
जा कारन यह तन धरा, ना सूती गल लागि ॥३५॥
अंबर[1] कुज्जा[2] करि लिया, गरजि भरे सब ताल।
जिन तें प्रीतम बीछुरा, तिन का कौन हवाल ॥३६॥
कागा करँक[3] ढँढोलिया[4], मुट्ठी इक लिया हाड़।
जा पिंजर बिरहा बसै, माँस कहाँ तें काढ़ ॥३७॥
रक्त माँस सब भखि गया, नेक न कीन्ही कानि[5]।
अब बिरहा कूकर भया, लागा हाड़ चबान ॥३८॥
बिरहा भयो बिछावना, ओढ़न बिपति बिजोग।
दुख सिरहाने पायतन[6], कौन बना संजोग ॥३९॥
बिरहिनि बिरह जगाइया, पैठि ढँढोरै छार[7]।
मत कोइ कोइला ऊबरै, जारै दूजो बार ॥४०॥
तन मन जोबन जारि के, भस्म करी है देंह।
उठी कबीरा बिरहिनी, अजहुँ ढँढोरै खेह ॥४१॥
अंक भरी भरि भेंटिये, मन नहिं बाँधै धीर।
कह कबीर ते क्या मिले, जब लगि दोय सरीर ॥४२॥
जो जन बिरही नाम के, झीना पिंजर तासु।
नैन न आवै नींदड़ी, अंग न जामै मासु ॥४३॥
नाम बियोगी बिकल तन, कर छूओ मत कोय।
छूवत ही मरि जाइगो, तालाबेली[8] होय ॥४४॥
जो जन भींजे नाम रस, बिगसित कबहुँ न मुक्ख।
अनुभव भावन दरस ही, ते नर सुक्ख न दुक्ख[9] ॥४५॥
कबीर चिनगी बिरह की, मो तन पड़ी उड़ाय।
तन जरि धरती हू जरी, अंबर जरिया जाय ॥४६॥

(१) आकाश। (२) मिट्टी का भाँडा। (३) हड्डी की ठठरी। (४) ढूँढ़ा। (५) लिहाज, मुरौवत। (६) पैताने। (७) राख को ढँढोलती है। (८) तड़प, बेकली। (९) जो भक्त नाम रस में पगे हैं और जिनका अनुभव जागा है उनको बाहरी हर्ष नहीं होता और दुख सुख के परे हो जाते हैं।

दीपक पावक आनिया, तेल भी लाया संग।
तीनों मिलि करि जोइया[1], उड़ि उड़ि मिलै पतंग ॥४७॥
हिरदे भीतर दव[2] बलै, धुवाँ न परगट होय।
जा के लागी सो लखै, की जिन लाई सोय ॥४८॥
झाल उठी झोली जली, खप्पर फूटम फूट।
हंसा जोगी चलि गया, आसन रही भभूत ॥४९॥
आगे आगे दव बलै, पाछे हरियर होय[3]।
बलिहारी वा बृच्छ[4] की, जड़ काटे फल जोय ॥५०॥
कबीर सुपने रैन के, पड़ा कलेजे छेक।
जब सोवों तब दुइ जना, जब जागों तब एक ॥५१॥
पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय।
चित चकमक चहुटै[5] नहीं, धूवाँ ह्वै ह्वै जाय ॥५२॥
बिरहा मो से यों कहै, गाढ़ा[6] पकड़ो मोहिं।
चरन कमल की मौज में, लै पहुँचाओं तोहिं ॥५३॥
सबही तरु तर जाइ के, सब फल लीन्हो चीख।
फिरि फिरि मँगत कबीर है, दरसनही की भीख ॥५४॥
बिरह प्रबल दल साजि के, घेर लियो मोहिं आय।
नहिं मारै छाड़ै नहीं, तलफ तलफ जिय जाय ॥५५॥
पिय बिन जिय तरसत रहै, पल पल बिरह सताय।
रैन दिवस मोहिं कल नहीं, सिसक सिसक जिय जाय ॥५६॥
जो जन बिरही नाम के, तिन की गति है येह।
देंही से उद्यम करैं, सुमिरन करैं बिदेह ॥५७॥
साईं सेवत जल गई, मास न रहिया देंह।
साईं जब लगि सेइहों, यह तन होय न खेह ॥५८॥

---

(१) संयोया। (२) आग। (३) झाड़ी को जला देने से थोड़े दिन में वह खूब हरी उगती है। (४) चाह। (५) चोट लगाना। (६) मज़बूत।

निस दिन दाझै बिरहिनी, अंतरगत की लाय[1]।
दास कबीरा क्यों बुझै, सतगुरु गये लगाय ॥५९॥
पीर पुरानी बिरह की, पिंजर पीर न जाय।
एक पीर है प्रीति की, रही कलेजे छाय ॥६०॥
चोट सतावै बिरह की, सब तन जरजर होय।
मारनहारा जानही, कै जेहि लागी सोय ॥६१॥
बिरहा बिरहा मत कहो, बिरहा है सुल्तान।
जा घट बिरह न संचरै, सो घट जान मसान ॥६२॥
देखत देखत दिन गया, निस भी देखत जाय।
बिरहिनि पिय पावै नहीं, बेकल जिय घबराय ॥६३॥
गलों तुम्हारे नाम पर, ज्यों आटे में नोन।
ऐसा बिरहा मेल करि, नित दुख पावै कौन ॥६४॥
सो दिन कैसा होयगा, गुरु गहेंगे बाँहि।
अपना करि बैठावहीं, चरन कँवल की छाँहि ॥६५॥
जो जन बिरही नाम के, सदा मगन मन माहिं।
ज्यों दरपन की सुंदरी, किनहूँ पकड़ी नाहिं ॥६६॥
तन भीतर मन मानिया, बाहर कहूँ न लाग।
ज्वाला तें फिर जल भया, बुझी जलन्ती आग ॥६७॥
चकई बिछुरी रैन की, आय मिली परभात।
सतगुरु से जो बीछुरे, मिलैं दिवस नहिं रात ॥६८॥
बासर सुख नहिं रैन सुख, ना सुख सुपने माहिं।
सतगुरु से जो बीछुरे, तिन को धूप न छाँहि ॥६९॥
बिरहिन उठि उठि भुइँ परै, दरसन कारन राम।
मूए पाछे देहुगे, सो दरसन केहि काम ॥७०॥

(१) आग।

मूए पीछे मत मिलौ, कहै कबीरा राम।
लोहा माटी मिलि गया, तब पारस केहि काम ॥७१॥
यह तन जारि भसम करौं, धूवाँ होय सुरंग।
कबहुक गुरु दाया करैं, बरसि बुझावैं अंग ॥७२॥
यह तन जारि के मसि[1] करौं, लिखौं गुरू का नाँव।
करौं लेखनी[2] करम की, लिखि लिखि गुरू पठाँव ॥७३॥
बिरहा पूत लोहार का, धवै[3] हमारी देह।
कोइला है नहिं छूटिहै, जब लगि होय न खेह ॥७४॥
बिरहिनि थी तौ क्यों रही, जरी न पिउ के साथ।
रहि रहि मूढ़ गहेलरी, अब क्यों मींजे हाथ ॥७५॥
लकरी जरि कोइला भई, मो तन अजहूँ आगि।
बिरह की ओदी लाकरी, सिलगि सिलगि उठि जागि ॥७६॥
बिरह बिथा बैराग की, कही न काहू जाय।
गूँगा सुपना देखिया, समझि समझि पछिताय ॥७७॥
सब रग ताँत रबाब[4] तन, बिरह बजावै नित्त।
और न कोई सुनि सकै, कै साईं कै चित्त ॥७८॥
तूँ मति जानै बीसरूँ, प्रीति घटै मम चित्त।
मरूँ तो तुम सुमिरत, मरूँ, जिऊँ तो सुमिरूँ नित्त ॥७९॥
मो बिरहिनि का पिउ मुआ, दाग न दीया जाय।
मासहिं गलि गलि भुइँ परा, करँक रही लपटाय ॥८०॥
भली भई जो पिउ मुआ, नित उठि करता रार।
छूटी गल की फाँसरी, सोऊँ पाँव पसार ॥८१॥
जीव बिलम्बा पीव से, अलख लख्यो नहिं जाय।
साहिब मिलै न झल बुझै, रही बुझाय बुझाय ॥८२॥
जीव बिलंबा पीव से, पिय जो लिया मिलाय।

---

(१) सियाही। (२) कलम। (३) धौंकै। (४) एक बाजा जो मुँह से बजाया जाता है।

लेख समान[1] अलेख में, अब कछु कहा न जाय ॥८३॥
आगि लगी आकास में, झरि झरि परै अँगार।
कबिरा जरि कंचन भया, काँच भया संसार ॥८४॥
बिरह अगिन तन मन जला, लागि रहा तत जीव।
कै वा जानै बिरहिनी, कै जिन भेंटा पीव ॥८५॥
बिरह कुल्हारी तन बहै[2], घाव न बाँधै रोह।
मरने का संसय नहीं, छूटि गया भ्रम मोह ॥८६॥
कबीर बैद बुलाइया, पकरि के देखी बाँहि।
बैद न बेदन जानई, करक करेजे माहिं ॥८७॥
जाहु बैद घर आपने, तेरा किया न होय।
जिन या बेदन निर्मई[3], भला करेगा सोय ॥८८॥
जाहु मीत घर आपने, बात न पूछै कोय।
जिन यह भार लदाइया, निरबाहैगा सोय ॥८९॥

प्रेम का अंग

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै भुइँ धरै, तब पैठै घर माहिं ॥ १ ॥
सीस उतारै भुइँ धरै, ता पर राखै पाँव।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय तो आव ॥ २ ॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय ॥ ३ ॥
प्रेम पियाला जो पियै, सीस दच्छिना देय।
लोभी सीस न दे सकै, नाम प्रेम का लेय ॥ ४ ॥
प्रेम पियाला भरि पिया, राचि रहा गुरु ज्ञान।
दिया नगारा सबद का, लाल खड़े मैदान ॥ ५ ॥
छिनहिं चढ़ै छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघट[4] प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय ॥ ६ ॥

(१) समाया। (२) चलै। (३) उपजाई, पैदा की। (४) जो कभी घटता नही।

आया प्रेम कहाँ गया, देखा था सब कोय।
छिन रोवै छिन में हँसै, सो तो प्रेम न होय ॥ ७ ॥
प्रेम प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्है कोय।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोय ॥ ८ ॥
प्रेम पियारे लाल सों, मन दे कीजै भाव।
सतगुरु के परसाद से, भला बना है दाव ॥ ९ ॥
जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु है हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं ॥१०॥
जा घट प्रेम न संचरै[1], सो घट जानु समान।
जैसे खाल लोहार की, साँस लेत बिन प्रान ॥११॥
आया बगूला[2] प्रेम का, तिनका उड़ा अकास।
तिनका तिनका से मिला, तिनका तिनके पास ॥१२॥
प्रेम बिकता मैं सुना, माथा साटे[3] हाट[4]।
बूझत बिलम्ब न कीजिये, तत्छिन दीजै काट ॥१३॥
प्रेम बिना धीरज नहीं, बिरह बिना बैराग।
सतगुरु बिन जावै नहीं, मन मनसा का दाग ॥१४॥
प्रेम तो ऐसा कीजिये, जैसे चन्द चकोर।
घींच[5] टूटि भुइँ माँ गिरै, चितवै वाही ओर ॥१५॥
अधिक सनेही माछरी, दूजा अल्प सनेह।
जबहीं जल तें बीछुरै, तबही त्यागै देह ॥१६॥
सौ जोजन साजन बसै, मानो हृदय मँझार।
कपट सनेही आँगने, जानु समुन्दर पार ॥१७॥
यह तत वह तत एक है, एक प्रान दुइ गात।
अपने जिय से जानिये, मेरे जिय की बात ॥१८॥
हम तुम्हरो सुमिरन करैं, तुम मोहिं चितवौ नाहिं।

---

(१) बसै। (२) बवंडर। (३) बदले। (४) बाजार। (५) गर्दन।

सुमिरन मन की प्रीति है, सो मन तुमहीं माहिं ॥१९॥
मेरा मन तो तुज्झ से, तेरा मन कहुँ और।
कह कबीर कैसे बनै, एक चित्त दुइ ठौर ॥२०॥
ज्यों मेरा मन तुज्झ से, यों तेरा जो होय।
अहरन ताता लोह ज्यों, संधि लखै ना कोय ॥२१॥
प्रीति जो लागी घुलि गइ, पैठि गई मन माहिं।
रोम रोम पिउ पिउ करै, मुख की सरधा नाहिं ॥२२॥
जो जागत सो स्वप्न में, ज्यों घट भीतर स्वास।
जो जन जा को भावता, सो जन ता के पास ॥२३॥
सोना सज्जन साधु जन, टूटि जुटै सौ बार।
दुर्जन कुम्भ कुम्हार का, एकै धका दरार[1] ॥२४॥
प्रीति ताहि से कीजिये, जो आप समाना होय।
कबहुँक जो अवगुन परै, गुनहीं लहैं समोय ॥२५॥
प्रेम बनिज नहिं करि सकै, चढ़ै न नाम सो गैल।
मानुष केरी खालरी, ओढ़ि फिरै ज्यों बैल ॥२६॥
जहाँ प्रेम तहँ नेम नहिं, तहाँ न बुधि ब्यौहार।
प्रेम मगन जब मन भया, तब कौन गिनै तिथि बार ॥२७॥
प्रेम पाँवरी पहिरि कै, धीरज काजर देइ।
सील सिंदूर भराइ कै, यों पिय का सुख लेइ ॥२८॥
प्रेम छिपाया ना छिपै, जा घट परघट होय।
जो पै मुख बोलै नहीं, तो नैन देत हैं रोय ॥२९॥
प्रेम भाव इक चाहिये, भेष अनेक बनाय।
भावे गृह में बास कर, भावे बन में जाय ॥३०॥
जोगी जंगम सेवड़ा, सन्यासी दुरवेस।
बिना प्रेम पहुँचै नहीं, दुरलभ सतगुरु देस ॥३१॥

---

(१) सज्जन और साधु जन सोने के समान हैं कि सौ बार भी टूटने पर जुट जाते हैं पर दुष्ट जन मट्टी के घड़े के सदृश हैं जिसमें एक ही धक्का लगने से दरार पड़ जाती है।

पीया चाहै प्रेम रस, राखा चाहै मान।
एक म्यान में दो खड़ग, देखा सुना न कान ॥३२॥
प्रेमी ढूँढ़त मैं फिरौं, प्रेमी मिलै न कोय।
प्रेमी से प्रेमी मिलै, गुरु भक्ती दृढ़ होय ॥३३॥
कबीर प्याला प्रेम का, अंतर लिया लगाय।
रोम रोम में रमि रहा, और अमल क्या खाय ॥३४॥
कबीर हम गुरु रस पिया, बाकी रही न छाक[1]।
पाका कलस कुम्हार का, बहुरि न चढ़सी चाक ॥३५॥
नाम रसायन अधिक रस, पीवत अधिक रसाल[2]।
कबीर पावन दुलभ है, माँगै सीस कलाल[3] ॥३६॥
कबीर भाठी प्रेम की, बहुतक बैठे आय।
सिर सौंपै सो पीवसी, नातर[4] पिया न जाय ॥३७॥
यह रस महँगा पिवै सो, छाड़ि जीव की बान।
माया साटे[5] जो मिलै, तौ भी सस्ता जान ॥३८॥
पया रस पिया सो जानिये, उतरै नहीं खुमार।
नाम अमल माता रहै, पियै अमी रस सार ॥३९॥
सबै रसायन मैं किया, प्रेम समान न कोय।
रति इक तन में संचरै, सब तन कंचन होय ॥४०॥
सागर उमड़ा प्रेम का, खेवटिया कोइ एक।
सब प्रेमी मिलि बूड़ते, जो यह नहिं होता टेक ॥४१॥
यही प्रेम निरबाहिये, रहनि किनारे बैठि।
सागर तें न्यारा रहा, गया लहरि में पैठि ॥४२॥
अमृत केरी मोटरी, राखी सतगुरु छोरि।
आप सरीखा जो मिलै ताहि पिलावैं घोरि ॥४३॥

(१) इच्छा। (२) अच्छा, मीठा। (३) शराब बनाने वाला। (४) नहीं तौ। (५) बदले।

अमृत पीवै ते जना, सतगुरु लागा कान।
बस्तु अगोचर मिलि गई, मन नहिं आवै आन ॥४४॥
साधू सीप समुद्र के, सतगुरु स्वाँती बूंद।
तृषा गई इक बुंद से, क्या ले करौं समुंद ॥४५॥
मिलना जग में कठिन है, मिलि बिछुड़ो जनि कोय।
बिछुड़ा सज्जन तेहि मिलै, जिन माथे मनि होय ॥४६॥
जोइ मिलै सो प्रीति में, और मिलै सब कोय।
मन से मनसा ना मिलै, तो देंह मिले का होय ॥४७॥
जो दिल दिलही में रहै, सो दिल कहूँ न जाय।
जो दिल दिल से बाहिरा, सो दिल कहाँ समाय ॥४८॥
जैसी प्रीति कुटुम्ब से, तैसिहु गुरु से होय।
कहै कबीर वा दास का, पला न पकड़ै कोय ॥४९॥
नैनों की करि कोठरी, पुतली पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डारि कै, पिय को लिया रिझाय ॥५०॥
जब लगि मरने से डरै, तब लगि प्रेमी नाहिं।
बड़ी दूर है प्रेम घर, समुझि लेहु मन माहिं ॥५१॥
पिय का मारग कठिन है, खाँड़ा हो जैसा।
नाचन निकसी बापुरी, फिर घूँघट कैसा ॥५२॥
पिय का मारग सुगम है, तेरा चलन अनेड़।
नाच न जानै बापुरी, कहै आँगना टेढ़ ॥५३॥
यह तो घर है प्रेम का, मारग अगम अगाध।
सीस काटि पग तर धरै, तब निकट प्रेम का स्वाद ॥५४॥
प्रेम भक्ति का गेह है, ऊँचा बहुत इकन्त।
सीस काटि पग तर धरै, तब पहुँचै घर संत ॥५५॥
सीस काटि पासँग किया, जीव सेर भर लीन्ह।
जो भावै सो आइ ले, प्रेम आगे हम कीन्ह ॥५६॥

प्रेम प्रीति में रचि रहै, मोच्छ मुक्ति फल पाय।
सबद माहिं तब मिलि रहै, नहिं आवै नहिं जाय ॥५७॥
जो तू प्यासा प्रेम का, सीस काटि करि गोय।
जब तू ऐसा करैगा, तब कछु होय तो होय ॥५८॥
हरि से तू जनि हेत कर, कर हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देत है, हरिजन हरिहीं देत ॥५९॥
प्रीति बहुत संसार में, नाना बिधि की सोय।
उत्तम प्रीति सो जानिये, सतगुरु से जो होय ॥६०॥
गुनवंता औ द्रब्य की, प्रीति करै सब कोय।
कबीर प्रीति सो जानिये, इन तें न्यारी होय ॥६१॥
कबीर ता से प्रीति करु, जो निरबाहै ओर।
बनै तो बिबिधि न राचिये, देखत लागे खोर ॥६२॥
कहा भयो तन बीछुरे, दूरि बसे जे बास।
नैनाहीं अंतर परा, प्रान तुम्हारे पास ॥६३॥
जो है जा का भावता, जब तब मिलिहै आय।
तन मन ताको सौंपिये, जो कबहूँ छाड़ि न जाय ॥६४॥
जल में बसै कमोदिनी, चंदा बसै अकास।
जो है जा का भावता, सो ताही के पास ॥६५॥
तन दिखलावै आपना, कछू न राखै गोय।
जैसी प्रीति कमोदिनी, ऐसी प्रीति जो होय ॥६६॥
सही हेत है तासु का, जा के सतगुरु टेक।
टेक निबाहै देह भरि, रहै सबद मिलि एक ॥६७॥
पासा पकड़ा प्रेम का, सारी[1] किया सरीर।
सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कबीर ॥६८॥
खेल जो मँडा खिलाड़ि से, आनँद बड़ा अघाय।
अब पासा काहू परो, प्रेम बँधा जुग जाय ॥६९॥

---

(१) गोट।

प्रीतम को पतियाँ लिखूँ, जो कहुँ होय बिदेस।
तन में मन में नैन में, ता को कहा सँदेस ॥७०॥

सतसंग का अंग

[सज्जन के लिये]

संगति से सुख ऊपजै, कुसंगति से दुख जोय।
कहै कबीर तहँ जाइये, साधु संग जहँ होय ॥ १ ॥
संगति कीजे संत की, जिन का पूरा मन।
अनतोले हीं देत हैं, नाम सरीखा धन ॥ २ ॥
कबीर संगत साध की, हरै और की ब्याधि।
संगत बुरी असाध की, आठो पहर उपाधि ॥ ३ ॥
कबीर संगत साध की, जौ की भूसी खाय।
खीर खाँड़ भोजन मिलै, साकट संग न जाय ॥ ४ ॥
कबीर संगत साध की, ज्यों गंधी का बास।
जो कछु गंधी दे नहीं, तौ भी बास सुबास ॥ ५ ॥
ऋद्धि सिद्धि माँगौं नहीं, माँगौं तुम पै येह।
निसु दिन दरसन साध का, कह कबीर मोहिं देय ॥ ६ ॥
कबीर संगत साध की, निस्फल कधी न होय।
होसी चंदन बासना, नीम न कहसी कोय ॥ ७ ॥
कबीर संगत साध की, नित प्रति कीजै जाय।
दुर्मति दूर बहावसी, देसी सुमति बताय ॥ ८ ॥
मथुरा भावै द्वारिका, भावै जा जगन्नाथ।
साध सँगति हरि भजन बिनु, कछू न आवै हाथ ॥ ९ ॥
साध सँगति अंतर पड़ै, यह मति कबहुँ न होय।
कहै कबीर तिहुँ लोक में, सुखी न देखा कोय ॥१०॥
कबीर कलह रु कल्पना, सतसंगति से जाय।
दुख वा से भागा फिरै, सुख में रहै समाय ॥११॥

साधुन के सतसंग तें, थरहर काँपै देह।
कबहूँ भाव कुभाव तें, मत मिटि जाय सनेह ॥१२॥
राम बुलावा भेजिया, दिया कबीरा रोय।
जो सुख साधू संग में, सो बैकुंठ न होय ॥१३॥
बंधे को बंधा मिलै, छूटै कौन उपाय।
कर संगति निरबंध की, पल में लेइ छुड़ाय ॥१४॥
जा पल दरसन साधु का, ता पल की बलिहारि।
सत्त नाम रसना बसै, लीजै जनम सुधारि ॥१५॥
ते दिन गये अकारथी, संगति भई न संत।
प्रेम बिना पसु जीवना, भक्ति बिना भगवंत ॥१६॥
कबीर लहर समुद्र की, निस्फल कधी न जाय।
बगुला परख न जानई, हंसा चुगि चुगि खाय ॥१७॥
जो घर गुरु की भक्ति नहिं, संत नहीं मिहमान।
ता घर जम डेरा दिया, जीवत भये मसान ॥१८॥
कबीर ता से संग करु, जो रे भजै सत नाम।
राजा राना छत्रपति, नाम बिना बेकाम ॥१९॥
कबीर मन पंछी भया, भावै तहवाँ जाय।
जो जैसी संगति करै, सो तैसा फल खाय ॥२०॥
कबीर चंदन के ढिंगे, बेधा ढाक पलास।
आप सरीखा करि लिया, जो था वा के पास ॥२१॥
कबीर खाई कोट की, पानी पिवै न कोय।
जाइ मिलै जब गंग से, सब गंगोदक होय ॥२२॥
एक घड़ी आधी घड़ी, आधी हूँ से आध।
कबीर संगति साध की, कटै कोटि अपराध ॥२३॥
घड़िहू की आधी घड़ी, भाव भक्ति में जाय।
सतसंगति पल ही भली, जम का धका न खाय ॥२४॥

[दुर्जन के लिये]

संगति भई तो क्या भया, हिरदा भया कठोर।
नौ नेजा पानी चढ़ै, तऊ न भीजै कोर ॥२५॥
हरिया जानै रूखड़ा, जो पानो का नेह।
सुखा काठ न जान ही, केतहु बूड़ा मेह ॥२६॥
कबीर मूढ़क प्रानियाँ, नखसिख पाखर आहि।
बाहनहारा क्या करै, बान न लागै ताहि ॥२७॥
पसुवा से पाला पर्यो, रहु रहु हिया न खीज।
ऊसर बीज न ऊगसी, घालै दूना बीज ॥२८॥
साखी सबद बहुत सुना, मिटा न मन का दाग।
संगति से सुधरा नहीं, ता का बड़ा अभाग ॥२९॥
चंदन परसा बावना, बिष ना तजै भुवंग।
यह चाहै गुन आपना, कहा करै सतसंग ॥३०॥
कबीर चंदन के निकट, नीम भी चंदन होय।
बूड़े बाँस बड़ाइया, यों जनि बूड़ो कोय ॥३१॥
चंदन जैसा साध है, सर्पहिं सम संसार।
वा के अंग लपटा रहै, भाजै नाहिं बिकार ॥३२॥
भुवंगम बास न बेधई, चंदन दोष न लाय।
सब अँग तो बिष से भरा, अमृत कहाँ समाय ॥३३॥
सत्त नाम रटिबो कर, निसु दिन साधुन संग।
कहो जो कौन बिचार तें, नाही लागत रंग ॥३४॥
मन दीया कहुँ औरही, तन साधुन के संग।
कहै कबीर कोरी गजी, कैसे लागै रंग ॥३५॥

कुसंग का अंग

जानि बूझि साची तजै करै झूठ से नेह।
ता की संगति हे प्रभू, सपनेहू मत देह ॥ १ ॥

काँचा सेती मत मिलै, पाका सेती बान।
काँचा सेती मिलत ही, होय भक्ति में हान ॥ २ ॥
तोहि पीर जो प्रेम की, पाका सेती खेल।
काँची सरसों पेरि के, खली भया ना तेल ॥ ३ ॥
कुल टूटा काँची परी, सरा न एकौ काम।
चौरासी बासा भया, दूरि परा सतनाम ॥ ४ ॥
दाग जो लागा नील का, सौ मन साबुन धोय।
कोटि जतन परबोधिये, कागा हंस न होय ॥ ५ ॥
मूरख के समुझावने, ज्ञान गाँठि को जाय।
कोइला होय न ऊजला, सौ मन साबुन लाय ॥ ६ ॥
लहसुन से चंदन डरै, मत रे बिगारै बास।
निगुरा से सगुरा डरै, यों डरपै जग से दास ॥ ७ ॥
संसारी साकट भला, कन्या क्वारी भाय।
साधु दुराचारी बुरा, हरिजन तहाँ न जाय ॥ ८ ॥
साधु भया तो क्या भया, माला पहिरी चार।
ऊपर कली[1] लपेटि कै, भीतर भरी भँगार ॥ ९ ॥
कबीर कुसँग न कीजिये, लोहा जल न तिराय।
कदली[2] सीप भुवंग मुख, एक बूँद तिराय ॥१०॥
उज्जल बूँद अकास की, परि गई भूमि बिकार।
मूल बिना ठामा[3] नहीं, बिन संगति भो छार ॥११॥
हरिजन सेती रूसना, संसारी से हेत।
ते नर कधी न नीपजैं, ज्यों कालर[4] का खेत ॥१२॥
गिरिये पर्बत सिखर तें, परिये धरनि मँझार।
मूरख मित्र न कीजिये, बूड़ौ काली धार ॥१३॥
मारी मरै कुसंग की, ज्यों केला ढिग बेरि।
वह हालै वह जोरई[5], साकट संग निबेरि ॥१४॥

(१) कलई। (२) केला। (३) ठौर, ठिकाना। (४) रेहार यानी रेह का। (५) मुरझाय।

केला तबहिं न चेतिया, जब ढिग जागी बेरि।
अब के चेते क्या भया, काँटों लीन्हा घेरि॥१५॥

कबीर कहते क्यों बनै, अनबनता के संग।
दीपक को भावै नहीं, जरि जरि मरै पतंग॥१६॥

ऊँचे कुल कहा जनमिया, जो करनी ऊँचि न होय।
कनक कलस मद से भरा, साधन निंदा सोय॥१७॥

सूक्ष्म मार्ग का अंग

उत तें कोई न बाहुरा, जा से बूझूँ धाय।
इत तें सबही जात हैं, भार लदाय लदाय॥ १ ॥

उत तें सतगुरु आइया, जा की बुधि है धीर।
भवसागर के जीव को, खेइ लगावै तीर॥ २ ॥

गागर ऊपर गागरी, चोले ऊपर द्वार।
सूली ऊपर साँथरा, जहाँ बुलावै यार॥ ३ ॥

कौन सुरति लै आवई, कौन सुरति लै जाय।
कौन सुरति है इस्थिरे, सो गुरु देहु बताय॥ ४ ॥

बास[1] सुरति लै आवई, सबद सुरति लै जाय।
परिचय स्रुति है इस्थिरे, सो गुरु दई बताय॥ ५ ॥

जा कारन मैं जाय था, सो तो मिलिया आय।
साईं तें सन्मुख भया, लागि कबीरा पाँय॥ ६ ॥

जो आवै तो जाय नहिं जाय तो आवै नाहिं।
अकथ कहानी प्रेम की, समुझि लेहु मन माहिं॥ ७ ॥

कौन देस कहँ आइया, जानै कोई नाहिं।
वह मारग पावै नहीं, भूलि परै येहि माहिं॥ ८ ॥

हम चाले अमरावती, टारे टूरे टाट।
आवन होय तो आइयो, सूली ऊपर बाट॥ ९ ॥

---

(१) बासना।

सूली ऊपर घर करै, विष का करै अहार।
ता का काल कहा करै, जो आठ पहर हुसियार ॥१०॥
यार बुलावै भाव से, मो पै गया न जाय।
धन मैली पिउ ऊजला, लागि न सक्कों पाँय ॥११॥
नाँव न जानै गाँव का, बिन जाने किन जाँव।
चलते चलते जुग भया, पाव कोस पर गाँव ॥१२॥
सतगुरु दीन दयाल हैं, दया करी मोहिं आय।
कोटि जनम का पंथ था, पल में पहुँचा जाय ॥१३॥
अगम पंथ मन थिर रहै, बुद्धि करै परबेस।
तन मन धन सब छाड़ि कै, तब पहुँचै वा देस ॥१४॥
सब को पूछत मैं फिरा, रहत कहै नहिं कोय।
प्रीति न जोरै गुरु से, रहन कहाँ से होय ॥१५॥
चलन चलन सब कोइ कहै, मोहिं अँदेसा और।
साहिब से परिचय नहीं, पहुँचैंगे केहि ठौर ॥१६॥
कबीर मारग कठिन है, कोई सकै न जाय।
गया जो सो बहुरै नहीं, कुसल कहै को जाय ॥१७॥
कबीर का घर सिखर पर, जहाँ सिलहिली गैल।
पाँव न टिकै पपीलि[1] का, पंडित लादे बैल ॥१८॥
जहाँ न चींटी चढ़ि सकै राई ना ठहराय।
मनुवाँ तहँ लै राखिया, तहँई पहुँचे जाय ॥१९॥
कबीर मारग कठिन है, सब मुनि बैठे थाकि।
तहाँ कबीरा चढ़ि गया, गहि सतगुरु की साखि[2] ॥२०॥
सुर नर थाके मुनि जना, उहाँ न कोई जाय।
मोटा[3] भाग कबीर का, तहाँ रहा घर छाय ॥२१॥
सुर नर थाके मुनि जना, थाके बिस्नु महेस।
तहाँ कबीरा चढ़ि गया, सतगुरु के उपदेस ॥२२॥

(१) चींटी। (२) भरोसा। (३) बड़ा।

कबीर गुरु हथियार करि, कूड़ा गली निवारु।
जो जो पंथे चालना, सो मो पंथ सँभारु ॥२३॥
अगम्म हूँ तें अगम है, अपरम्पार अपार।
तहँ मन धीरज क्यों धरै, पंथ खरा निरधार ॥२४॥
बिन पाँवन की राह है, बिन बस्ती का देस।
बिना पिंड का पुरुष है, कहै कबीर सँदेस ॥२५॥
जेहि पैंड़े पंडित गया, तिस ही गही बहीर[1]।
औघट घाटी नाम की, तहँ चढ़ि रहा कबीर ॥२६॥
घाटहि पानी सब भरै, औघट भरै न कोय।
औघट घाट कबीर का, भरै सो निर्मल होय ॥२७॥
बाट बिचारी क्या करै, पंथि न चलै सुधार।
राह आपनी छाड़ि कै, चलै उजाड़ उजाड़ ॥२८॥
कहँ तें तुम जो आइया, कौन तुम्हारा ठाम।
कौन तुम्हारी जाति है, कौन पुरुष का नाम ॥२९॥
अमर लोक तें आइया, सुख के सागर ठाम।
जाति हमारि अजाति है, अमर पुरुष का नाम ॥३०॥
कहवाँ तें जिव आइया, कहवाँ जाय समाय।
कौन डोरि धरि संचरै[2], मोहिं कहो समुझाय ॥३१॥
सरगुन तें जिव आइया, निरगुन जाय समाय।
सुरति डोर धरि संचरै, सतगुरु कहि समुझाय ॥३२॥
ना वहँ आवागवन था, नहिं धरती आकास।
कबीर जन कहवाँ हते, तब था कोइ न पास ॥३३॥
नाहीं आवागवन था, नहिं धरती आकास।
हतो कबीरा दास जन, साहिब पास खवास ॥३४॥
पहुँचेंगे तब कहेंगे, वही देस की सीच[3]।

(१) लोग, संसार। (२) घुसै, चढ़ै। (३) शीतल स्थान।

अबहीं कहा तड़ागिये[1], बेड़ी पायन बीच ॥३५॥
करता की गति अगम है, चलु गुरु के उनमान।
धीरे धीरे पाँव दे, पहुँचोगे परमान ॥३६॥
प्रान पिंड को तजि चलै, मुआ कहै सब कोय।
जीव छता[2] जामे मरै, सुछम लखै न सोय ॥३७॥
मरिये तो मरि जाइये, छूटि परै जंजार।
ऐसा मरना को मरै, दिन में सौ सौ बार ॥३८॥

चितावनी का अंग

कबीर गर्ब न कीजिये, काल गहे कर केस।
ना जानौं कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस ॥ १ ॥
आज काल्ह के बीच में, जंगल हैगा बास।
ऊपर ऊपर हर फिरै, ढोर[3] चरैंगे घास ॥ २ ॥
हाड़ जरै ज्यों लाकड़ी, केस जरै ज्यों घास।
सब जग जरता देखि करि, भये कबीर उदास ॥ ३ ॥
झूठे सुख को सुख कहैं, मानत हैं मन मोद।
जगत चबेना काल का, कुछ मुख में कुछ गोद ॥ ४ ॥
कुसल कुसल ही पूछते, जग में रहा न कोय।
जरा[4] मुई ना भय मुआ, कुसल कहाँ से होय ॥ ५ ॥
पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जाति।
देखत ही छिपि जायगी, ज्यों तारा परभाति ॥ ६ ॥
निधड़क बैठा नाम बिनु, चेति न करै पुकार।
यह तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार ॥ ७ ॥
रात गँवाई सोइ करि, दिवस गँवायो खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय ॥ ८ ॥
कै खाना कै सोवना, और न कोई चीत।
सतगुरु सबद बिसारिया, आदि अंत का मीत ॥ ९ ॥

(१) कूदना, डींग मारना। (२) आछत, मौजूद रहते। (३) चौपाये। (४) वृद्ध अवस्था।

यहि औसर चेत्यो नहीं, पसु ज्यों पाली देह।
सत्त नाम जान्यो नहीं, अंत पड़े मुख खेह ॥१०॥
लूटि सकै तो लूटि ले, सत्त नाम भंडार।
काल कंठ तें पकरिहै, रोकै दसौ दुवार ॥११॥
आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै, चिड़ियाँ चुग गईं खेत ॥१२॥
आज कहै मैं काल्ह भजूँगा, काल्ह कहै फिर काल्ह।
आज काल्ह के करत ही, औसर जासी चाल ॥१३॥
काल्ह करै सो आज करु, सबहि साज तेरे साथ।
काल्ह काल्ह तू क्या करै, काल्ह काल के हाथ ॥१४॥
काल्ह कर सो आज करु, आज करै सो अब्ब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब ॥१५॥
पाव पलक की सुधि नहीं, करै काल्ह का साज।
काल अचानक मारसी, ज्यों तीतर को बाज ॥१६॥
पाव पलक तो दूर है, मो पै कह्यो न जाय।
ना जानूँ क्या होयगा, पाव बिपल के मायँ ॥१७॥
कबीर नौबति आपनी, दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन[1] यह गली, बहुरि न देखौ आय ॥१८॥
जिन के नौबति बाजती, मंगल बँधते बार[2]।
एकै सतगुरु नाम बिनु, गये जनम सब हार ॥१९॥
पाँचो नौबति बाजती, होत छतीसो राग।
सो मंदिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग ॥२०॥
ढोल दमामा गड़गड़ी, सहनाई अरु भेरि[3]।
अवसर चले बजाइ के, है कोइ लावै फेरि ॥२१॥
कबीर थोड़ा जीवना, माँडै बहुत मँडान।
सबहि उभा[4] में लगि रहा, राव रंक सुल्तान ॥२२॥

---

(१) शहर। (२) बन्दनवार। (३) बाजे का नाम। (४) चिन्ता।

इक दिन ऐसा होयगा, सब से पड़ै बिछोह।
राजा राना छत्रपति, क्यों नहिं सावध[1] होहि ॥२३॥
ऊजड़ खेड़े[2] ठीकरी, गढ़ि गढ़ि गये कुम्हार।
रावन सरिखा चलि गया, लंका का सरदार ॥२४॥
ऊँचा महल चुनावते, करते होड़म होड़।
सुबरन कली ढलावते, गये पलक में छोड़ ॥२५॥
कहा चुनावै मेढ़ियाँ[3], लंबी भीति उसारि[4]।
घर तो साढ़े तीन हथ, घना तो पौने चार[5] ॥२६॥
पाँच तत्त का पूतला, मानुष धरिया नाम।
दिना चार के कारने, फिरि फिरि रोकै ठाम ॥२७॥
कबीर गर्ब न कीजिये, देंही देखि सुरंग।
बिछुरे पै मेला नहीं, ज्यों केचुली भुजंग ॥२८॥
कबीर गर्ब न कीजिये, अस जोबन की आस।
टेसू फूला दिवस दस, खंखर भया पलास ॥२९॥
कबीर गर्ब न कीजिये, ऊँचा देखि अवास।
काल्ह परों भुइँ लेटना, ऊपर जमसी घास ॥३०॥
कबीर गर्ब न कीजिये, चाम लपेटे हाड़।
हय बर ऊपर छत्र तर, तो भी देवैं गाड़ ॥३१॥
पक्की खेती देखि करि, गर्बै कहा किसानु।
अजहूँ भोला बहुत है, घर आवै तब जानु ॥३२॥
जेहि घट प्रेम न प्रीति रस, पुनि रसना नहिं नाम।
ते नर पसु संसार में, उपजि खपे बेकाम ॥३३॥
ऐसा यह संसार है, जैसा सेमर फूल।
दिन दस के ब्यौहार में, झूँठे रंग न भूल ॥३४॥

---

(१) सावधान, होशियार। (२) गाँव। (३) मढ़ी, घर। (४) ओसारा। (५) जीव का घर जो शरीर है उसका नाप साढ़े तीन हाथ होता है या बहुत लम्बा हुआ तो पौने चार हाथ।

कबीर धूल सकेलि[1] कै, पुड़ी[2] जो बाँधी येह ।
दिवस चार का पेखना, अंत खेह की खेह ॥३५॥
पाँच पहर धंधे गया, तीन पहर रहे सोय ।
एको घड़ी न हरि भजे, मुक्ति कहाँ तें होय ॥३६॥
कबीर मंदिर लाख का, जड़िया हीरा लाल ।
दिवस चार का पेखना, बिनसि जायगा काल ॥३७॥
सपने सोया मानवा, खोल देखि जो नैन ।
जीव परा बहु लूट में, ना कछु लेन न देन ॥३८॥
मरोगे मरि जाहुगे, कोई न लेगा नाम ।
ऊजड़ जाइ बसाहुगे, छोड़ि के बसता गाम ॥३९॥
घर रखवाला बाहरा, चिड़िया खाया खेत ।
आधा परधा ऊबरै, चेत सकै तो चेत ॥४०॥
कबीर जो दिन आज है, सो दिन नाहीं काल्ह ।
चेत सकै तो चेतियो, मीच रही है ख्याल ॥४१॥
माटी कहै कुम्हार को, तूँ क्या रूँदै मोहिं ।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं रूँदूँगी तोहिं ॥४२॥
जिन गुरु की चोरी करी, गये नाम गुन भूल ।
ते बिधना बादुर[3] रचे, रहे उरधमुख भूल ॥४३॥
सत्त नाम जाना नहीं, लागी मोटी खोरि[4] ।
काया हाँड़ी काठ की, ना यह चढ़ै बहोरि ॥४४॥
सत्त नाम जाना नहीं, हूआ बहुत अकाज ।
बूड़ेगा रे बापुरा, बड़े बड़ों की लाज ॥४५॥
सत्त नाम जाना नहीं, चूके अब की घात ।
माटी मलत कुम्हार ज्यों, घनो सहै सिर लात ॥४६॥
कबीर या संसार में, घना मनुष मतिहीन ।

---

(१) समेट के । (२) पुड़िया । (३) चमगादड़ । (४) सराप ।

सत्त नाम जाना नहीं, आये टापा[१] दीन्ह ॥४७॥
आया अनआया हुआ, जो राता संसार ।
पड़ा भुलावे गाफिला, गये कुबुद्धी हार ॥४८॥
कहा कियो हम आइ के, कहा करैंगे जाइ ।
इत के भये न उत्त के, चाले मूल गँवाइ ॥४९॥
कबीर गुरु की भक्ति बिन, धृग जीवन संसार ।
धूवाँ का सा धौलहर[२], जात न लागै बार ॥५०॥
जगतहिं में हम राचिया, झूठे कुल की लाज ।
तन छीजै कुल बिनसिहै, चढ़े न नाम जहाज ॥५१॥
यह तन काँचा कुंभ[३] है, लिये फिरै था साथ ।
टपका[४] लागा फूटिया, कछु नहिं आया हाथ ॥५२॥
पानी का सा बुदबुदा, देखत गया बिलाय ।
ऐसे जिउड़ा जायगा, दिन दस ठोली[५] लाय ॥५३॥
कबीर यह तन जात है, सकै तो ठौर लगाव ।
कै सेवा कर साध की, कै गुरु के गुन गाव ॥५४॥
काया मंजन क्या करै, कपड़ा धोयम धोय ।
उज्जल होइ न छूटसी, सुख नींदड़ी न सोय ॥५५॥
मोर तोर की जेवरी[६], बटि बाँधा संसार ।
दास कबीरा क्यों बँधे, जा के नाम अधार ॥५६॥
जिन जाना निज गेह[७] को, सो क्यों जोड़ै मित[८] ।
जैसे पर घर पाहुना, रहै उठाये चित्त ॥५७॥
आये हैं सो जायँगे, राजा रंक फकीर ।
एक सिंघासन चढ़ि चले, इक बाँधे जात जँजीर ॥५८॥
जो जानहु जिव आपना, करहु जीव को सार ।
जियरा ऐसा पाहुना, मिले न दूजी बार ॥५९॥

---

(१) अँधेरी । (२) धरहरा । (३) घड़ा मिट्टी का । (४) ठोकर । (५) ठठो हँसी । (६) रस्सी । (७) घर । (८) मित्र ।

बनिजारा को बैल ज्यों, टाँडा[1] उतर्यो आय।
एकन को दूना भया, इक चला मूल गँवाय ॥६०॥
कबीर यह तन जातु है, सकै तो राखु बहोर।
खाली हाथों वे गये, जिनके लाख करोर ॥६१॥
आस पास जोधा खड़े, सबै बजावैं गाल।
मंझ महल से लै चला, ऐसा काल कराल ॥६२॥
हाँकों[2] परबत फाटते, समुँदर घूँट भराय।
ते मुनिवर धरती गले, क्या कोइ गर्ब कराय ॥६३॥
या दुनिया में आइ कै, छाँड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना होय सो लेइ लै, उठी जात है पैंठ ॥६४॥
यह दुनिया दुइ रोज की, मत कर या से हेत।
गुरु चरनन से लागिये, जो पूरन सुख देत ॥६५॥
तन सराय मन पाहरु[3], मनसा उतरी आय।
कोउ काहू का है नहीं, (सब) देखा ठोंक बजाय ॥६६॥
मैं मैं बड़ी बलाय है, सको तो निकसो भागि।
कहै कबीर कब लागि रहै, रुई लपेटी आगि ॥६७॥
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजै, और ठगे दुख होय ॥६८॥
मौत बिसारी बावरे, अचरज कीया कौन।
तन माटी मिलि जायगा, ज्यों आटे में नोन ॥६९॥
जनम मरन दुख याद कर, कूड़े काम निवार।
जिन जिन पंथों चालना, सोई पंथ सम्हार ॥७०॥
कबीर खेत किसान का, मिरगों खाया झाड़।
खेत बिचारा क्या करै, जो धनी करै नहिं बाड़[4] ॥७१॥

---

(१) लदनी। (२) आवाज़ से। (२) पहरेदार। (४) टट्टी जो बचाव के लिये खेत के चारो ओरे लगाते हैं; रक्षा।

बासर[1] सुख ना रैन सुख ना सुख सपने माहिं ।
जे नर बिछुड़े नाम से, तिन की धूप न छाहिं ॥७२॥
कबीर सोता क्या करै, क्यों नहिं देखै जाग ।
जा के संग से बीछुड़ा, वाही के सँग लाग ॥७३॥
कबीर सोता क्या करै, उठि कै जपो दयार[2] ।
एक दिना है सोवना, लम्बे पाँव पसार ॥७४॥
कबीर सोता क्या करै, सोते होय अकाज ।
ब्रह्मा का आसन डिगा, सुनी काल की गाज ॥७५॥
अपने पहरे जागिये, ना पड़ि रहिये सोय ।
ना जानौं छिन एक में, किस का पहरा होय ॥७६॥
चकवी बिछुरी रैन की, आनि मिलै परभात ।
जे नर बिछुरे नाम से, दिवस मिलैं नहिं रात ॥७७॥
दीन गँवायो दुनी सँग, दुनी न चाली साथ ।
पाँव कुल्हाड़ी मारिया, मूरख अपने हाथ ॥७८॥
कुल खोये कुल ऊबरै, कुल राखे कुल जाय ।
नाम अकुल[3] को भेंटिया, सब कुल गया बिलाय ॥७९॥
दुनिया के धोखे मुया, चाला कुल की कानि ।
तब क्या कुल की लाज है, जब लै धरैं मसान ॥८०॥
कुल करनी के कारने, हंसा गया बिगोय ।
तब क्या कुल की लाज है चार पाँव का होय ॥८१॥
उज्जल पहिरे कापड़े, पान सुपारी खाहिं ।
सो इक गुरु की भक्ति बिनु, बाँधे जमपुर जाहिं ॥८२॥
मलमल खासा पहिरते खाते नागर पान ।
ते भी होते मानवी, करते बहुत गुमान ॥८३॥
गोफन[4] माहीं पौढ़ते, परिमल[5] अंग लगाय ।
ते सुपने दीसैं नहीं, देखत गये बिलाय ॥८४॥

(१) दिन । (२) दयाल । (३) कुल से रहित । (४) गुफा । (५) सुगन्धि ।

मेरा संगी कोइ नहीं, सबै स्वारथी लोय।
मन परतीति न ऊपजै, जिव बिस्वास न होय ॥८५॥

कबीर बेड़ा[1] जरजरा, फूटे छेद हजार।
हरुए हरुए[2] तरि गये, बूड़े जिन सिर भार ॥८६॥

डागल ऊपर दौड़ना, सुख नींदड़ी न सोय।
पुन्नों पाया दिवसड़ा, ओछी ठौर न खोय ॥८७॥

मैं भँवरा तोहिं बरजिया, बन बन बास न लेय।
अटकैगा कहुँ बेल से, तड़पि तड़पि जिय देय ॥८८॥

बाड़ी के बिच भँवर था, कलियाँ लेता बास।
सो तो भँवरा उड़ि गया, तजि बाड़ी की आस ॥८९॥

दुनियाँ सेती दोस्ती, होय भजन में भंग।
एकाएकी गुरु से, कै साधन को संग ॥९०॥

भय बिनु भाव न ऊपजै, भय बिनु होय न प्रीति।
जब हिरदे से भय गया, मिटी सकल रस रीति ॥९१॥

भय से भक्ति करै सबै, भय से पूजा होय।
भय पारस है जीव को, निर्भय होय न कोय ॥९२॥

डर करनी डर परम गुरु, डर पारस डर सार।
डरत रहै सो ऊबरै, गाफिल खावै मार ॥९३॥

खलक मिला खाली हुआ, बहुत किया बकबाद।
बाँझ हिलावै पालना, ता में कौन सवाद ॥९४॥

यह जग कोठी काठ की, चहुँ दिसि लागी आगि।
भीतर रहा सो जरि मुआ, साधू उबरे भागि ॥९५॥

यहि बेरिया तो फिरि नहीं, मन में देखु बिचार।
आया लाभ के कारने, जनम जुवा मत हार ॥९६॥

(१) नाव। (२) हलके हलके।

बैल गढ़ंता नर गढ़ा, चूका सींग अरु पोंछ[1]।
एकहि गुरु के नाम बिनु, धिक दाढ़ी धिक मोंछ ॥९७॥

यह मन फूला बिषय बन, तहाँ न लाओ चीत।
सागर क्यों ना उड़ि चलो, सुनो बैन मन मीत ॥९८॥

कहै कबीर पुकारि के, चेतै नाहीं कोय।
अब की बेरिया चेति है, सो साहिब का होय ॥९९॥

मनुष जनम नर पाइ के, चूकै अब की घात।
जाय परै भव चक्र में, सहै घनेरी लात ॥१००॥

लोग भरोसे कौन के, बैठि रहे अरगाय[2]।
ऐसे जियरा जम लुटै, भेंड़हिं लुटै कसाय[3] ॥१०१॥

ऐसी गति संसार की, ज्यों गाडर की ठाट[4]।
एक पड़ा जेहि गाड़[5] में, सबै जायँ तेहि बाट ॥१०२॥

भ्रम का बाँधा ये जगत, यहि बिधि आवै जाय।
मानुष जनमहिं पाइ नर, काहे को जहड़ाय[6] ॥१०३॥

धोखे धोखे जुग गया, जनमहि गया सिराय[7]।
थिति[8] नहिं पकड़ो आपनी, यह दुख कहाँ समाय ॥१०४॥

केतो कहौं बुझाइ कै, पर हथ जीव बिकाय।
मैं खैंचौं सतलोक को, सीधा जमपुर जाय ॥१०५॥

तू मत जाने बावरे, मेरा है सब कोय।
पिंड प्रान से बँधि रहा, सो अपना नहिं होय ॥१०६॥

ऐसा संगी कोइ नहीं, जैसा जीव रु देह।
चलती बेरियाँ रे नरा, डारि चला ज्यों खेह ॥१०७॥

---

(१) बैल का जन्म होना चाहिये था पर बिधना सींग और पोंछ लगाना भूल गया जि से मनुष्य की सूरत बन गई फिर जो भगवंत भजन न किया तो ऐसी दाढ़ी और मोंछ [illegible] धिक्कार है। (२) अलग होके, बेपरवाह होके। (३) जैसे बकरे को कसाई मारता है ऐ[illegible] ही निर्दईपन से जम तुम्हारा बध करैगा। (४) भेड़ का झुण्ड। (५) गड़हा। (६) ठगाय[illegible] (७) बीत। (८) स्थिरता।

एक सीस का मानवा, करता बहुतक हीस[1]।
लंकापति रावन गया, बीस भुजा दस सीस ॥१०८॥

जात सबन कहँ देखिया, कहहिं कबीर पुकार।
चेता[2] होहु तो चेति ल्यो, दिवस परत है धार[3] ॥१०९॥

कहै कबीर पुकारि के, ये कलऊ बेवहार।
एक नाम जाने बिना, बूड़ि मुआ संसार ॥११०॥

मूए हो मरि जाहुगे, मुए की बाजी ढोल।
सुपन सनेही जग भया, सहिदानी रहिगो बोल ॥१११॥

नाम मछंदर ना बचे, गोरखदत्त रु ब्यास।
कहै कबीर पुकारि के, परे काल की फाँस ॥११२॥

झूठ झूठ कँह डारहू, मिथ्या यह संसार।
तेहिं कारन मैं कहत हौं, जा तें होइ उबार ॥११३॥

झूठा सब संसार है, कोऊ न अपना मीत।
सत्त नाम को जानि ले, चलै सो भौजल जीत ॥११४॥

बहुतै तन को साजिया, जनमो भरि दुख पाय।
चेतत नाहीं बावरे, मोर मोर गुहराय ॥११५॥

खाते पीते जुग गया, अजहुँ न चेतो आय।
कहै कबीर पुकारि कै, जीव अचेते जाय ॥११६॥

परदे परदे चलि गया, समुझि परी नहिं बानि।
जो जानै सो बाचिहै, होत सकल की हानि ॥११७॥

पाँच तत्त का पूतरा, मानुष धरिया नाम।
एक तत्त के बीछुरे, बिकल भया सब ठाम ॥११८॥

इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारी[4] को कहै, तन की नारी[5] नाहिं ॥११९॥

(१) हिर्स। (२) समझदार। (३) धाड़=डाका। (४) स्त्री। (५) नाड़ी।

भँवर बिलंबे[१] बाग में, बहु फूलन की आस ।
जीव बिलंबे बिषय में, अँतहुँ चले निरास ॥१२०॥
काल खड़ा सिर ऊपरे, जागु बिराने मिंत[२] ।
जा का घर है गैल में, क्यों सोवै निःचिंत ॥१२१॥
काया काठी काल घुन, जतन जतन घुनि खाय ।
काया माहीं काल है, मर्म न कोऊ पाय ॥१२२॥
चलती चक्की देखि कै, दिया कबीरा रोय ।
दुइ पट[३] भीतर आइकै, साबित गया न कोय ॥१२३॥
काल चक्र चक्की चलै, सदा दिवस अरु रात ।
सगुन अगुन दुइ पाटला, ता में जीव पिसात ॥१२४॥
आसै पासै जो फिरै, निपट पिसावै सोय ।
कीला से लागा रहै, ता को बिघन न होय[४] ॥१२५॥
चक्की चली गुपाल की, सब जग पीसा झारि ।
रूढ़ा[५] सबद कबीर का, डारा पाट उखारि ॥१२६॥
साहू से भा चोरवा, चोरन से भयो गुज्झ ।
तब जानैगो जीयरा, मार पड़ैगी तुज्झ ॥१२७॥
सेमर सुवना सेइया, दुइ ढेंढ़ी की आस ।
ढेंढ़ी फूटि चटाक दे, सुवना चला निरास ॥१२८॥
मूए हो मरि जाहुगे, बिन सर थोथे भाल ।
परेहु कराइल[६] बृच्छ तर, आजु मरहु की काल्ह ॥१२९॥
नाम न जानै गाँव का, भूला मारग जाय ।
काल्ह गड़ैगा काँटवा, अगमन[७] कस न कराय ॥१३०॥

(१) आशक्त हुए । (२) मित्र । (३) चक्की के दो पल्ले । (४) मुँह से सभी क[हते] हैं कि काल की चक्की चल रही है पर सच्चे मन से कोई नहीं मानता नहीं तो की[ला] जिसकी सत्ता से वह घूमती है अर्थात् भगवंत को ऐसा दृढ़ कर पकड़े कि आवागवन रहित हो जाय । (५) बलवान । (६) करील या टेंटी की झाड़ जो काँटेदार होती है अ[ौर] पत्ती नहीं होती । (७) आगे से चेतना ।

आज काल्ह दिन एक में, इस्थिर नाहिं सरीर।
कह कबीर कस राखिहो, काँचे बासन नीर ॥१३१॥
सुनहु संत संतगुरु बचन, मत लीजै सिर भार।
हौं हजूर ठाढ़ो कहत, अब तें सम्हरि सम्हार ॥१३२॥
पूरब ऊगै पच्छिम अथवै[1], भखै पवन का फूल।
राहु गरासै ताहु को, मानुष काहें भूल ॥१३३॥
जीव मर्म जानै नहीं, अंध भया सब जाय।
बादी[2] द्वारे दाद[3] नहिं, जनम जनम पछिताय ॥१३४॥
नाम भजो तो अब भजो, बहुरि भजौगे कब्ब।
हरियर हरियर रूखड़े, इंधन होइ गये सब्ब ॥१३५॥
टक्क टक्क गया जोवता, पल पल गया बिहाय।
जीव जँजाले परि रहा, जमहिं दमाम बजाय[4] ॥१३६॥
मैं इकला ये दुइ जना[5], साथी नाहीं काय[6]।
जो जम आगे ऊबरौं, (तौ) जरा पहूँचै आय ॥१३७॥
जरा कुत्ती जोबन ससा, काल अहेरी लार।
अबकी छिन में पकरिहै गरबै कहा गँवार[7] ॥१३८॥
काल हमारे सँग रहै, कस जीवन की आस।
दिन दस नाम सम्हारि ले, जब लगि पिंजर साँस ॥१३९॥
आठ पहर यौंही गया, माया मोह जँजाल।
सत्तनाम हिरदे नहीं, जीति लिया जम काल ॥१४०॥
कबीर पाँच पखेरुआ, राखे पोष[8] लगाय।
एक जो आयो पारधी[9], ले गयो सबै उड़ाय ॥१४१॥

---

(१) डूबै (सूरज)। (२) मुद्दई यानी काल। (३) न्याव। (४) आसरा ताकते ताकते समय बीत गया, जीव जंजाल में फँस रहा और उधर से जमराज ने नगाड़ा कूच का बजा दिया। (५) जरा (अर्थात् जरजर अवस्था बुढ़ापे को) और मरन। (६) कोई। (७) जवानी रूपी खरगोस के पीछे वृद्धाई रूपी कुतिया उसके तोड़ डालने को लगी है और साथ ही उसके काल शिकारी है सो तेरे इस मानुष जन्म को भी छिन में नष्ट कर देगा तूं किस घमंड में भूला है। (८) पालन पोषन। (९) शिकारी।

मंदिर माहीं झलकती, दीवा की सी जोति ।
हंस बटाऊ[१] चलि गया, काढ़ी घर की छोति[२] ॥१४२॥

बारी बारी आपने, चले पियारे मित्त ।
तेरी बारी जीयरा, नियरे आवै नित्त ॥१४३॥

माली आवत देखि कै, कलियाँ करैं पुकारि ।
फूली फूली चुनि लिये, कालिह हमारी बारि[३] ॥१४४॥

परदे रहती पदमिनी, करती कुल की कानि ।
छड़ी जो पहुँची काल की, ढेर भई मैदान ॥१४५॥

मछरी दह[४] छोड़ौ नहीं, धीमर[५] तेरो काल ।
जेहिं जेहिं डाबर[६] घर करौ, तहँ तहँ मेलै जाल ॥१४६॥

पानी में की माछरी, क्यों तैं पकर्यो तीर ।
कड़िया खटकी जाल की, आइ पहूँचा कीर[७] ॥१४७॥

हे मतिहीनी माछरी, राख न सकी सरीर ।
सो सरवर सेया नहीं, (जहँ) जाल काल नहिं कीर ॥१४८॥

हे मतिहीनी माछरी, धीमर मीत कियाय ।
करि समुद्र से रूसना, छीलर[८] चित्त दियाय ॥१४९॥

काँची काया मन अथिर, थिर थिर काल करंत ।
ज्यों ज्यों नर निधड़क फिरत, त्यों त्यों काल हसंत ॥१५०॥

टाला टूली दिन गया, ब्याज बढ़ता जाय ।
ना गुरु भज्यो न खत कट्यो[९], काल पहूँचा आय ॥१५१॥

कबीर पैंड़ा[१०] दूर है, बीचि पड़ी है रात ।
ना जानौं क्या होयगा, ऊगे तें परभात[११] ॥१५२॥

---

(१) बटोही । (२) प्राण के निकलते ही घर की छत निकालने को उसे धोते हैं । (३) पारी । (४) कुण्ड, गहरा पानी । (५) कहार या मल्लाह जो मछली पकड़ता है । (६) पानी या गढ़ा । (७) कीर नाम किरात अर्थात् भिल्ल जाति का है जो शिकार करके खाते हैं । हे मछली जिसका तालाब के बीच में स्थान था तू क्यों किनारे आई जिससे जाल में फंस गई । (८) छिछला पानी । (९) कर्म की रेखा नहीं कटी या लेखा नहीं चुका । (१०) रास्ता । (११) सवेरा ।

हम जानैं थे खायँगे, बहुत जमीं बहु माल।
ज्यों का त्यों ही रहि गया, पकरि लै गया काल ॥१५३॥
चहुँ दिसि पक्का कोट था, मंदिर नगर मँझार।
खिड़की खिड़की पाहरू, गज बंधा दरबार ॥१५४॥
चहुँ देसि सूरा बहु खड़े, हाथ लिये हथियार।
रहि गये सबही देखते, काल ले क्या मार ॥१५५॥
संसय काल सरीर में, बिषम[1] काल है दूर।
जा को कोई ना लखै, जारि करै सब धूर ॥१५६॥
दव[2] की दाही लाकड़ी, ठाढ़ी करै पुकार।
अब जो जाउँ लुहार घर, डाहै दूजी बार ॥१५७॥
मेरा बीर[3] लुहारिया, तू मत जारै मोहिं।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं जारौंगी तोहिं ॥१५८॥
जरनेहारा भी मुआ, मुआ जरावनहार।
है है करते भी मुए, का से करौं पुकार ॥१५९॥
भाई बीर बटाउआ, भरि भरि नैनन रोय।
जा का था सो ले लिया, दीन्हा था दिन दोय ॥१६०॥
निःचय काल गरासही, बहुत कहा समुझाय।
कह कबीर मैं का कहौं, देखत ना पतियाय ॥१६१॥
मरती बिरिया पुन[4] करै, जीवत बहुत कठोर।
कह कबीर क्यों पाइये, काढ़े खाँडे चोर[5] ॥१६२॥
कबीर बैद बुलाइया, पकड़ि दिखाई बाहें।
बैद न बेदन[6] जानही, कफ्फ करेजे माहिं ॥१६३॥
कबीर यह तन बन भया, कर्म जो भया कुहारि[7]।
आप आप को काटिहै, कहै कबीर बिचार ॥१६४॥

---

(१) कठिन। (२) अगिन। (३) भाई। (४) पुन्य दान। (५) जब चोर तलवार निकाले खड़ा है उसको कैसे पकड़ सकोगे। (६) दुक्ख, दरद। (७) कुल्हाड़ी।

कबीर सतगुरु सरन की, जो कोइ छाड़ै ओट।
घन अहरन बिच लोह ज्यों, घनी सहै सिर चोट ॥१६५॥
महलन माहीं पौढ़ते, परिमल अंग लगाय।
ते सुपने दीसैं नहीं, देखत गये बिलाय ॥१६६॥
जङ्गल ढेरी राख की, उपरि उपरि हरियाय।
ते भी होते मानवा, करते रँग रलियाय ॥१६७॥
तेरा संगी कोइ नहीं, सबै स्वारथी लोय।
मन परतीति न ऊपजै, जिव बिस्वास न होय ॥१६८॥
जा को रहना उत्त घर, सो क्यों लोड़ै[1] इत्त।
जैसे पर घर पाहुना, रहै उठाये चित्त ॥१६९॥
ज्यों कोरी रेजा बुनै, नियरा आवै छोर।
ऐसा लेखा मीच का, दौरि सकै तौ दौरि ॥१७०॥
कोठे ऊपर दौरना, सुख नींदरी न सोय।
पुन्ये पाया देहरा, ओछी ठौर न खोय ॥१७१॥
मैं मैं मेरी जनि करै, मेरी मूल बिनासि।
मेरी पग का पैकड़ा[2], मेरी गल की फाँसि ॥१७२॥
कबीर नाव है झाँझरी, कूरा[3] खेवनहार।
हलके हलके तिर गये, बूड़े जिन सिर भार ॥१७३॥
कबीर नाव को झाँझरी, भरी बिराने भार।
खेवट से परिचय नहीं, क्योंकर उतरै पार ॥१७४॥
कायथ[4] कागद काढ़िया, लेखा वार न पार।
जब लगि स्वास सरीर में, तब लगि नाम सँभार ॥१७५॥
कबीर रसरी पाँव में, कहा सोवै सुख चैन।
स्वास नगारा कूँच का, बाजत है दिन रैन ॥१७६॥
राज दुआरे बंधिया, मूड़ो धुनै गजन्द[5]।

(१) चाहै या चाह करै। (२) बेड़ी। (३) कुटिल। (४) चित्रगुप्त। (५) हाथी।

मनुष जनम कब पाइहौं, भजिहौं परमानन्द ॥१७७॥

मनुष जनम दुर्लभ अहै, होय न बारम्बार ।
तरवर से पत्ता झरै, बहुरि न लागै डार ॥१७८॥

काल चिचावत[1] है खड़ा, जागु पियारे मिंत ।
नाम सनेही जगि रहा, क्यों तू सोय निचिंत ॥१७९॥

जरा आय जोरा किया, पिय आपन पहिचान ।
अन्त कछू पल्ले परै, ऊउत है खरिहान १८०॥

बिरिया बीती बल घटा, केस पलटि भये धौर[2] ।
बिगरा काज सँवारि लै, फिरि छूटन नहिं ठौर ॥१८१॥

घड़ी जो बाजे राज दर, सुनता है सब कोय ।
आयु घटै जोबन खिसै, कुसल कहाँ तें होय ॥१८२॥

कै कूसल अनजान के, अथवा नाम जपंत ।
जनम मरन होवै नहीं, तौ बूझौ कुसलंत ॥१८३॥

पात झरंता यों कहै, सुनु तरवर बनराय ।
अब के बिछुरे ना मिलैं, दूर परैंगे जाय ॥१८४॥

जो ऊगे सो अत्थवै[3], फूलै सो कुम्हिलाय ।
जो चुनिये सो ढरि परै, जामै[4] सो मरि जाय ॥१८५॥

निधड़क बैठा नाम बिनु, चेति न करै पुकार ।
यह तन जल का बुदबुदा, बिनसत नाहीं बार ॥१८६॥

तीन लोक पिंजरा भया, पाप पुन्न दोउ जाल ।
सकल जीव सावज[5] भये, एक अहेरी काल ॥१८७॥

कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गया सब तार ।
जंत्र बिचारा क्या करै, चला बजावनहार ॥१८८॥

यह जिव आया दूर तें, जाना है बहु दूर ।
बिच के बासे[6] बसि गया, काल रहा सिर पूर ॥१८९॥

---

(१) चिल्लाता है । (२) सफेद । (३) अस्त होय, डूबै । (४) जन्मै, उगै । (५) शिकार ।
(६) पड़ान, टिकने की जगह ।

कबीर गाफिल क्या करै, आया काल नजीक।
कान पकरि के लै चला, ज्यों अजयाहिं खटीक[1] ॥१६०॥
बालपना भोले गयो, और जुवा महमन्त।
बृद्धपने आलस भयो, चला जरंते अंत ॥१६१॥
साथी हमरे चलि गये, हम भी चालनहार।
कागद में बाकी रही, ता तें लागी बार ॥१६२॥
घाट जगाती धरमराय, सब का झारा लेहि।
सत्त नाम जाने बिना, उलटि नरक में देहि ॥१६३॥
जिन पै नाम निसान है, तिन्ह अटकावै कौन।
पुरुष खजाना पाइया, मिटि गया आवागौन ॥१६४॥
खुलि खेलो संसार में, बाँधि न सक्कै कोय।
घाट जगाती क्या करै, सिर पर पोट[2] न होय ॥१६५॥

उदारता का अंग

कबीर गुरु के मिलन की बात सुनी हम दोय।
कै साहिब को नाम लै, कै कर ऊँचा होय ॥ १ ॥
बसंत ऋतु जाचक भया, हरषि दिया द्रुम[3] पात।
ता तें नव पल्लव[4] भया, दिया दूर नहिं जात ॥ २ ॥
जो जल बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यहि सज्जन को काम ॥ ३ ॥
हाड़ बड़ा हरि भजन कर, द्रव्य बड़ा कछु देय।
अकल बड़ी उपकार कर, जीवन का फल येह ॥ ४ ॥
कहै कबीरा देय तू, जब लगि तेरी देह।
देह खेह होइ जायगी, तब कौन कहैगा देह ॥ ५ ॥
गाँठि होय सो हाथ कर, हाथ होय सो देह।
आगे हाट न बानिया, लेना होय सो लेह ॥ ६ ॥

(१) जैसे बकरी को खटिक ले जाता है। (२) कर्म का बोझ। (३) पेड़। (४) पत्तियाँ।

देह धरे का गुन यही, देह देह कछु देह ।
बहुरि न देही पाइये, अब की देह सो देह ॥ ७ ॥
दान दिये धन ना घटै, नदी न घट्टै नीर ।
अपनी आँखों देखिये, यों कथि कहै कबीर ॥ ८ ॥
सतही में सत बाँटई, रोटी में तें टूक ।
कहै कबीर ता दास को, कबहुँ न आवै चूक ॥ ९ ॥

सहन का अंग

काँच कथीर अधीर नर, जतन करत है भंग ।
साधू कंचन ताइये, चढ़ै सवाया रंग ॥ १ ॥
काँच कथीर अधीर नर, ताहि न उपजै प्रेम ।
कह कबीर कसनी सहै, के हीरा कै हेम[1] ॥ २ ॥
कसत कसौटी जो टिकै, ता को सबद सुनाय ।
सोई हमरा बंस है, कह कबीर समुझाय ॥ ३ ॥

विश्वास का अंग

कबीर क्या मैं चिंतहूँ, मम चिंतें क्या होय ।
मेरी चिंता हरि करै, चिंता मोहिं न कोय ॥ १ ॥
साधू गाँठि न बाँधई, उदर समाना लेय ।
आगे पाछे हरि खड़े जब माँगे तब देय ॥ २ ॥
चिंता न कर अचिंत रहु, देनहार समरत्थ ।
पसू पखेरू जीव जंत, तिन के गाँठि न हत्थ ॥ ३ ॥
अंडा पालै काछुई बिन थन राखै पोख[2] ।
यों करता सब की करै, पालै तीनिउ लोक ॥ ४ ॥
पौ फाटी पगरा[3] भया जागे जीवा जून ।
सब काहू को देत है, चोंच समाना चून ॥ ५ ॥
सत्त नाम से मन मिला, जम से परा दुराय ।
मोहिं भरोसा इष्ट का, बन्दा नरक न जाय ॥ ६ ॥

(१) सोना । (२) परवरिश । (३) सबेरा ।

कर्म करीमा लिखि रहा, अब कछु लिखा न होय।
मासा घटै न तिल बढ़ै, जो सिर फोड़ै कोय॥ ७॥
साईं इतना दीजिये, जा में कुटुंब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय॥ ८॥
जा के मन बिस्वास है, सदा गुरू हैं संग।
कोटि काल झकझोलही, तऊ न है चित भङ्ग॥ ९॥
खोज पकरि बिस्वास गहु, धनी मिलैंगे आय।
अजया[1] गज मस्तक धढ़ी, निरभय कोंपल खाय॥१०॥
पाँडर[2] पिंजर मन भँवर, अरथ अनूपम बास।
एक नाम सींचा अमी, फल लागा बिस्वास॥११॥
पद गावै लौलीन है, कटै न संसय फाँस।
सबै पछोरै थोथरा, एक बिना बिस्वास॥१२॥
गाया जिन पाया नहीं, अनगाये तें दूर।
जिन गाया बिस्वास गहि, ता के सदा हजूर॥१३॥
गावनही में रोवना, रोवनही में राग।
एक बनहिं में घर करै, एक घरहिं बैराग॥१४॥
जो सच्चा बिस्वास है, तो दुख क्यों ना जाय।
कहै कबीर बिचारि के, तन मन देहि जराय॥१५॥
बिस्वासी है गुरु भजे, लोहा कंचन होय।
नाम भजे अनुराग तें, हरष सोक नहिं दोय॥१६॥

दुबिधा का अंग

दुबिधा जा के मन बसै, दयावंत जिउ नाहिं।
कबीर त्यागो ताहि को, भूलि देउ जनि बाहिं॥ १॥
हिरदे माहीं आरसी, मुख देखा नहिं जाय।
मुख तो तबही देखई, दुबिधा देइ बहाय॥ २॥

---

(१) बकरी। (२) चमेली के पेड़ की एक जाति।

पढ़ा गुना सीखा सभी, मिटी न संसय सूल।
कह कबीर का से कहूँ, यह सब दुख का मूल ॥ ३ ॥
चींटी चावल लै चली, बिच में मिलि गइ दार[1]।
कह कबीर दोउ ना मिलै, इक लै दूजी डार ॥ ४ ॥
आगा पीछा दिल करै, सहजै मिलै न आय।
सो बासी जम लोक का, बाँधा जमपुर जाय ॥ ५ ॥
सत्त नाम कड़ुवा लगै, मीठा लागै दाम।
दुबिधा में दोऊ गये, माया मिली न राम ॥ ६ ॥
तकत तकावत रहि गया, सका न बेझी[2] मारि।
सबै तीर खाली परा, चला कमाना डारि ॥ ७ ॥
नगर चैन तब जानिये, (जब) एकै राजा होय।
याहि दुराजी[3] राज में, सुखी न देखा कोय ॥ ८ ॥
संसा खाया सकल जग, संसा किनहुँ न खद्ध।
जो बेधा गुरु अच्छरा, तिन संसा चुनि चुनि खद्ध ॥ ९ ॥

मध्य का अंग

पाया कहैं ते बावरे, खोया कहैं ते कूर।
पाया खोया कछु नहीं, ज्यों का त्यों भरपूर ॥ १ ॥
भजूँ तो को है भजन को, तजूँ तो को है आन।
भजन तजन के मध्य में, सो कबीर मन मान ॥ २ ॥
लेउँ तो महा पतिग्रह, देऊँ तो भोगंत।
लेन देन के मध्य में, सो कबीर निज संत ॥ ३ ॥
हिंदू कहूँ तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहिं।
पाँच तत्व का पूतला, गैबी खेलै माहिं ॥ ४ ॥
गैबी आया गैब तें, इहाँ लगाया ऐब।
उलटि समाना गैब में, तब कहँ रहिया ऐब ॥ ५ ॥

---

(१) दाल। (२) निशाना। (३) माया और ब्रह्म।

अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप।
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप ॥ ६

सहज का अंग

सहज सहज सब कोउ कहै, सहज न चीन्है कोय।
जा सहजे साहिब मिलै, सहज कहावै सोय ॥ १
सहज सहज सब कोइ कहै, सहज न चीन्है कोय।
जा सहजे बिषया तजै, सहज कहावै सोय ॥ २
सहजै सहजे सब भया, मन इंद्री का नास।
निःकामी से मन मिला, कटी करम की फाँसि ॥ ३
सहजै सहजै सब गया, सुत बित काम निकाम।
एकमेक है मिलि रहा, दास कबीरा नाम ॥ ४
जो कछु आवै सहज में, सोई मीठा जान।
कड़ुआ लागै नीम सा, जा में ऐंचा तान ॥ ५
सहज मिलै सो दूध सम, माँगा मिलै सो पानि।
कहै कबीर वह रक्त सम, जा में ऐंचा तानि ॥ ६
काहे को कलपत फिरै, दुखी होत बेकार।
सहजै सहजै होयगा, जो रचिया करतार ॥ ७
जो कलपै तो दूर है, अनकलपे है सोय।
सतगुरु मेठी कलपना, सहजै होय सो होय ॥ ८

अनुभव ज्ञान का अंग

आतम अनुभव ज्ञान की, जो कोइ पूछै बात।
सो गूँगा गुड़ खाइ के, कहै कौन मुख स्वाद ॥ १
ज्यों गूँगे के सैन को, गूँगा ही पहिचान।
त्यों ज्ञानी के सुक्ख को, ज्ञानी होय सो जान ॥ २
नर नारी के स्वाद को, खसी[1] नहीं पहिचान।
तत[2] ज्ञानी के सुक्ख को, अज्ञानी नहिं जान ॥ ३

---

(१) हिजड़ा। (२) तत्व।

आतम अनुभव सुक्ख को, का कोइ बूझै बात ।
कै जो कोई जानई, कै अपनो ही गात ॥ ४ ॥

आतम अनुभव जब भयो, तब नहिं हर्ष बिषाद ।
चित्त दीप सम ह्वै रह्यो, तजि करि बाद बिबाद ॥ ५ ॥

कागद लिखै सो कागदी, को ब्योहारी जीव ।
आतम दृष्टि कहाँ लिखै, जित देखै तित पीव ॥ ६ ॥

लिखा लिखी की है नहीं, देखा देखी की बात ।
दुलहा दुलहिन मिलि गये, फीकी परी बरात ॥ ७ ॥

भरो होय सो रीतई, रीतो[1] होय भराय ।
रीतो भरो न पाइये, अनुभव सोई कहाय ॥ ८ ॥

॥ बाचक ज्ञान का अंग ॥

ज्यों अँधरे को हाथिया, सब काहू को ज्ञान ।
अपनी अपनी कहत हैं, का को धरिये ध्यान ॥ १ ॥

अँधरन को हाथी सही, हैं साचे सगरे ।
हाथन की टोई कहैं, आँखिन के अँधरे ॥ २ ॥

ज्ञानी से कहिये कहा, कहत कबीर लजाय ।
अँधे आगे नाचते, कला अकारथ जाय ॥ ३ ॥

ज्ञानी तो निर्भय भया, मानै नाहीं संक ।
इन्द्रिन के रे बसि परा, भुगतै नर्क निसंक ॥ ४ ॥

ज्ञानी मूल गँवाइया, आपं भये करता ।
ता तें संसारी भला, जो सदा रहै डरता ॥ ५ ॥

ज्ञानी भूले ज्ञान कथि, निकट रह्यो निज रूप ।
बारह खोजैं बापुरे, भीतर बस्तु अनूप ॥ ६ ॥

भीतर तो भेद्यो नहीं, बाहर कथैं अनेक ।
जो पै भीतर लखि परै, भीतर बाहर एक ॥ ७ ॥

(१) खाली ।

समझ सरीखी बात है, कहन सरीखी नाहिं।
जेते ज्ञानी देखिये, तेते संसय माहिं॥ ८॥

॥ करनी और कथनी का अंग ॥

कथनी मीठी खाँड़ सी, करनी बिष की लोय।
कथनी तजि करनी करै, तो बिष से अमृत होय॥ १॥
करनी गर्ब - निवारनी, मुक्ति स्वारथी सोय।
कथनी तजि करनी करै, तो मुक्ताहल होय॥ २॥
कथनी के सूरे घने, थोथे बाँधे तीर।
बिरह बान जिन के लगा, तिन के बिकल सरीर॥ ३॥
कथनी बदनी छाड़ि के, करनी से चित लाय।
नरहिं नीर प्याये बिना, कबहूँ प्यास न जाय॥ ४॥
करनी बिन कथनी कथै, अज्ञानी दिन रात।
कूकर ज्यों भूँसत फिरै, सुनी सुनाई बात॥ ५॥
करनी बिन कथनी कथै, गुरुपद लहै न सोय।
बातों के पकवान से, धापा नाहीं कोय॥ ६॥
लाया साखि बनाय कर, इत उत अच्छर काट।
कहै कबीर कब लग जिये, जूठी पत्तल चाट॥ ७॥
पढ़ि औरन समझावई, मन नहिं बाँधै धीर।
रोटी का संसय पड़ा, यों कहि दास कबीर॥ ८॥
पानी मिलै न आप को, औरन बकसत छीर।
आपन मन निस्चल नहीं, और बँधावत धीर॥ ९॥
करनी करै सो पुत्र हमारा, कथनी कथै सो नाती।
रहनी रहै सो गुरू हमारा, हम रहनी के साथी॥१०॥
कथनी करि फूला फिरै, मेरे हृदय उचार।
भाव भक्ति समझै नहीं, अंधा मूढ़ गँवार॥११॥
कथनी थोथी जगत में, करनी उत्तम सार।
कह कबीर करनी सबल, उतरै भौजल पार॥१२॥

पद जोरै साखी कहै, साधन परि गइ रोस।
काढ़ा जल पीवै नहीं, काढ़ि पियन की हौंस ॥१३॥
करनी जो रज[1] मानही, कथनी मेरु[2] समान।
कथता बकता मरि गया, मूरख मूढ़ अजान ॥१४॥
जैसी मुख तें नीकसै, तैसी चालै नाहिं।
मनुष नहीं वे स्वान गति, बाँधे जमपुर जाहिं ॥१५॥
जैसी मुख तें नीकसै, तैसी चालै चाल।
तेहि सतगुरु नियरे रहै, पल में करै निहाल ॥१६॥
कबीर करनी क्या करै, जो गुरु नाहिं सहाय।
जेहि जेहि डारी पग धरै, सो सो निव निव जाय ॥१७॥
करनी करनी सब कहै, करनी माहिं बिबेक।
वह करनी बहि जान दे, जो नहिं परखै एक ॥१८॥
कथनी कथा तो क्या हुआ, करनी ना ठहराय।
कलावंत[3] का कोटि ज्यों, देखत ही ढहि जाय ॥१९॥
कथनी काँची हो गई, करनी करी न सार।
स्रोता बकता मरि गये, मूरख अनँत अपार ॥२०॥
कूकस[4] कूटै कनि[5]. बिना, बिन करनी का ज्ञान।
ज्यों बन्दूक गोली बिना, भड़कि न मारै आन ॥२१॥
कथनी को धीजूँ[6] नहीं, करनी मेरा जीव।
कथनी करनी दोउ थकी, (तब) महल पधारे पीव ॥२२॥
कथते हैं करते नहीं, मुख के बड़े लबार।
मुँहड़ा काला होयगा, साहिब के दरबार ॥२३॥
कथते हैं करते सही, साच सरोतर सोय।
साहिब के दरबार में आठ पहर सुख होय ॥२४॥
कबीर करनी आपनी, कबहुँ न निस्फल जाय।
सात समुँद आड़ा पड़ै मिलै अगाऊ आय ॥२५॥

(१) धूल, जर्रा। (२) पहाड़। (३) बाजीगर। (४) भूसी। (५) गल्ला, मींगी। (६) चाहूँ।

जो करनी अन्तर बसै, निकसै मुख की बाट।
बोलत ही पहिचानिये, चोर साहु को घाट ॥२६॥
चोर चुराई तूँबड़ी, गाड़े पानी माहिं।
वह गाड़े तें ऊछलै, (यों) करनी छानी[1] नाहिं ॥२७॥
कथनी को तो भानि कै, करनी देइ बहाय।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय तो आय ॥२८॥
साखी कहै गहै नहीं, चाल चली नहिं जाय।
सलिल मोह नदिया बहै, पाँव नहीं ठहराय ॥२९॥
जैसी करनी जासु की, तैसी भुगतै सोय।
बिन सतगुरु की भक्ति के, जन्म जन्म दुख होय ॥३०॥
मारग चलते जो गिरै, ता को नाहीं दोस।
कह कबीर बैठा रहै, ता सिर करड़े कोस ॥३१॥

॥ सार गहनी का अंग ॥

साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय ॥ १ ॥
पहिले फटकै छाँट कै, थोथा सब उड़ि जाय।
उत्तम भाँड़े पाइया, जो फटके ठहराय ॥ २ ॥
सत संगति है सूप ज्यों, त्यागै फटकि असार।
कह कबीर गुरु नाम लै, परसै नाहिं बिकार ॥ ३ ॥
औगुन को तो ना गहै, गुनही को लै बीन।
घट घट महकै[2] मधुप[3] ज्यों, परमातम लै चीन्ह ॥ ४ ॥
हंसा पय लो काढ़ि लै, छीर नीर निरवार।
ऐसे गहै जो सार को, सो जन उतरै पार ॥ ५ ॥
छीर रूप सतनाम है, नीर रूप ब्यवहार।
हंस रूप लोइ साध है, तन का छाननहार ॥ ६ ॥

(१) छिपी, ढकी। (२) सूंघै। (३) भंवरा।

पारा कंचन काढ़ि लै, जो रे मिलावै आन।
कहै कबीरा सार मत, परगट किया बखान ॥ ७ ॥
रक्त छाड़ि पय को गहै, जो रे गऊ का बच्छ।
औगुन छाड़ै गुन गहै, सार-गराही[1] लच्छ ॥ ८ ॥

असार गहनी का अंग

कबीर कोट सुगंध तजि, नरक गहै दिन रात।
असार-ग्राही मानवा, गहै असारहि बात ॥ १ ॥
मच्छी मल को गहत है, निर्मल बस्तुहिं छाड़ि।
कहै कबीर असार मति, माँड़ि रहा मन माँड़ि ॥ २ ॥
आटा तजि भूसी गहै, चलनी देखु निहारि।
कबीर सारहि छाड़ि कै, करै असार अहार ॥ ३ ॥
पापी पुन्न न भावई, पापहिं बहुत सुहाय।
माखि सुगंधी परिहरै, जहँ दुर्गंध तहँ जाय ॥ ४ ॥
रसहिं छाड़ि छोही गहै, कोल्हू परतछ देख।
गहै असारहिं सार तजि, हिरदे नाहिं बिबेक ॥ ५ ॥
दूध त्यागि रक्तै गहै, लगी पयोधर[2] जोंक।
कहै कबीर असार मति, लच्छन राखै कोक[3] ॥ ६ ॥
निर्मल छाड़ै मल गहै, जनम असारै खोय।
कहै कबीरा सार तजि, आपुन गये बियोग ॥ ७ ॥
बूटी बाटी पान करि, कहै दुःख जो जाय।
कह कबीर सुख ना लहै, यही असार सुभाय ॥ ८ ॥

पारख का अंग

जब गुन को गाहक मिलै, तब गुन लाख बिकाय।
जब गुन को गाहक नहीं, तब कौड़ी बदले जाय ॥ १ ॥
हरि हीरा जन जौहरी, लै लै माँडी हाट।
जब रे मिलैगा पारखी, तब हीरा का साट ॥ २ ॥

---

(१) सार-ग्राही। (२) थन। (३) सरहंस जिसका अहार मछली है।

कबीर देखि के परखि ले, परखि के मुखाँ बुलाय।
जैसी अंतर होयगी, मुख निकसैगी ताय ॥ ३ ॥
हीरा तहाँ न खोलिये, जहँ खोटी है हाट।
कसि करि बाँधो गाठरी, उठि करि चालो बाट ॥ ४ ॥
एकहि बार परखिये, ना वा बारम्बार।
बालू तौहू किरकिरी, जो छानै सौ बार ॥ ५ ॥
पिउ मोतियन की माल है, पोई काँचे धाग।
जतन करो झटका घना, नहिं टूटै कहुँ लागि ॥ ६ ॥
हीरा परखै जौहरी, सब्दहिं परखै साध।
कबीर परखै साध को, ता का मता अगाध ॥ ७ ॥
हीरा पाया परखि के, घन में दीया आनि।
चोट सही फूटा नहीं, तब पाई पहिचानि ॥ ८ ॥
जो हंसा मोती चुगै, काँकर क्यों पतियाय।
काँकर माथा ना नवै, मोती मिलै तो खाय ॥ ९ ॥
हंसा देस सुदेस का, परे कुदेसा आय।
जा का चारा मोतिया, घोंघे क्यों पतियाय ॥१०॥
हंसा बगुला एकसा, मानसरोवर माहिं।
बगा ढंढोरै माछरी, हंसा मोती खाहिं ॥११॥
गावनिया के मुख बसौं, स्रोता के मैं कान।
ज्ञानी के हिरदे बसौं, भेदी के निज प्रान ॥१२॥
किर्तनिया के कोस बिस, सन्यासी से तीस।
गिरही के हिरदे बसौं, बैरागी के सीस ॥१३॥

अपारख का अंग

चंदन गया बिदेसड़े, सब कोइ कहै पलास।
ज्यों ज्यों चूल्हे झोंकिया, त्यों त्यों अधकी बास ॥ १ ॥
एक अचम्भा देखिया, हीरा हाट बिकाय।
परखनहारा बाहरी, कौड़ी बदले जाय ॥ २ ॥

हीरा साहिब नाम है, हिरदे -भीतर देख।
बाहर भीतर हरि रहा, ऐसा आप अलेख ॥ ३ ॥
बाद बके दम जात है, सुरति निरति लै बोल।
नित प्रति हीरा सबद का, गाहक आगे खोल ॥ ४ ॥
नाम रतन धन पाइ कै, गाँठ बाँध ना खोल।
नाहिं पटन[1] नहिं पारखी, नहिं गाहक नहिं मोल ॥ ५ ॥
जहँ गाहक तहँ मैं नहीं, मैं तहँ गाहक नाहिं।
परिचय बिन फूला फिरै, पकर सबद की बाहिं ॥ ६ ॥
कबीर खाँड़हिं छाँड़ि कै, काँकर चुनि चुनि खाय।
रतन गँवाया रेत में फिर पीछे पछिताय ॥ ७ ॥
कबीर ये जग आँधरा, जैसी अंधी गाय।
बछरा था सो मरि गया, ऊभी[2] चाम चटाय ॥ ८ ॥

—:०:—

कबीर साहिब का साखी-संग्रह

(भाग २)

॥ नाम का अंग ॥

आदि नाम पारस अहै, मन है मैला लोह।
परसत ही कंचन भया, छूटा बंधन मोह ॥ १ ॥
आदि नाम बीरा[3] अहै, जीव सकल ल्यौ बूझि।
अमरावै सतलोक लै, जम नहिं पावै सूझि ॥ २ ॥
आदि नाम निज सार है, बूझि लेहु सो हंस।
जिन जान्यो निज नाम को, अमर भयो सो बंस ॥ ३ ॥
आदि नाम निज मूल है, और मंत्र सब डार[4]।
कह कबीर निज नाम बिनु, बूड़ि मुआ संसार ॥ ४ ॥

(१) बाजार। (२) खड़ी। (३) पान परवाना, हुक्मनामा (४) शाखा।

कोटि नाम संसार में, ता तें मुक्ति न होय।
आदि नाम जो गुप्त जप, बूझै बिरला कोय ॥ ५ ॥
राम नाम सब कोइ कहै, नाम न चीन्है कोय।
नाम चीन्हि सतगुरु मिलै, नाम कहावै सोय ॥ ६ ॥
ओंकार निस्चय भया, सो करता मत जान।
साचा सबद कबीर का, परदे में पहिचान ॥ ७ ॥
जो जन होइहै जौहरी, रतन लेहि बिलगाय।
सोहं सोहं जपि मुआ, मिथ्या जनम गँवाय ॥ ८ ॥
नाम रतन धन मुज्झ में, खान खुली घट माहिं।
सेंत मेंत ही देत हौं, गाहक कोई नाहिं ॥ ९ ॥
सभी रसायन हम करी, नाहिं नाम सम कोय।
रंचक घट में संचरै, सब तन कंचन होय ॥१०॥
जबहिं नाम हिरदे धरा, भया पाप का नास।
मानो चिनगी आग की, परी पुरानी घास ॥११॥
कोइ न जम से बाचिया, नाम बिना धरि खाय।
जे जन बिरही नाम के, ता को देखि डेराय ॥१२॥
पूँजी मेरी नाम है, जा तें सदा निहाल।
कबीर गरजै पुरुष बल, चोरी करै न काल ॥१३॥
कबीर हमरे नाम बल, सात दीप नौखंड।
जम डरपै सब भय करै, गाजि रहा ब्रह्मंड ॥१४॥
नाम रतन सोइ पाइहै, ज्ञान दृष्टि जेहिं होय।
ज्ञान बिना नहिं पावई, कोटि करै जो कोय ॥१५॥
ज्ञान दीप परकास करि, भीतर भवन जराय।
तहाँ सुमिर सतनाम को, सहज समाधि लगाय ॥१६॥
एक नाम को जानि कै, मेटु करम का अंक।
तबहीं सो सुचि[1] पाइहै, जब जिव होय निसंक ॥१७॥

(१) पवित्रता।

एक नाम को जान करि, दूजा देइ बहाय ।
तीरथ ब्रत जप तप नहीं, सतगुरु चरन समाय ॥१८॥
जैसे फनपति[1] मंत्र सुनि, राखै फनहिं सिकोरि ।
तैसे बौरा नाम तें, काल रहै मुख मोरि ॥१९॥
सब को नाम सुनावहूँ, जो आवैगो पास ।
सबद हमारो सत्य है, दृढ़ राखो बिस्वास ॥२०॥
होय बिबेका सबद का, जाय मिलै परिवार ।
नाम गहै जो पहुँचई, माहहु कहा हमार ॥२१॥
सुरति समावै नाम में, जग से रहै उदास ।
कह कबीर गुरु चरन में, दृढ़ राखौ बिस्वास ॥२२॥
अस अवसर नहिं पाइहौ, धरौ नाम कड़िहार[2] ।
भवसागर तरि जाव तब, पलक न लागै बार ॥२३॥
आसा तौ इक नाम की, दूजी आस निरास ।
पानी माहीं घर करै, तौहू मरै पियास ॥२४॥
आसा तो इक नाम की, दूजी आस निवार ।
दूजी आसा मारसी, ज्यों चौपर की सार[3] ॥२५॥
नाम जो रत्ती एक है, पाप जो रती हजार ।
आध रती घट संचरै, जारि करै सब छार ॥२६॥
कोटि करम कटि पलक में, जो रंचक आवै नाँव ।
जुग अनेक जो पुन्न करि, नहीं नाम बिनु ठाँव ॥२७॥
कबीर सतगुरु नाम में, सुरति रहै सरसार[4] ।
तौ मुख तें मोती झरैं, हीरा अनँत अपार ॥२८॥
सत्तनाम निज औषधी, सतगुरु दई बताय ।
औषधि खाय रु पथ[5] रहै, ता की बेदन जाय ॥२९॥
कबीर सतगुरु नाम में, बात चलावै और ।
तिस अपराधी जीव को, तीन लोक कित ठौर ॥३०॥

(१) साँप । (२) निकालने वाला । (३) गोट । (४) मस्त । (५) परहेजी खाना ।

सुपनहु में बर्राइ के, धोखेहु निकरै नाम।
वा के पग की पैंतरी[1], मेरे तन की चाम ॥३१॥
कबीर सब जग निर्धना, धनवंता नहिं कोय।
धनवंता सोइ जानिये, सत्तनाम धन होय ॥३२॥
जा की गाँठी नाम है, ता के है सब सिद्धि।
कर जोरे ठाढ़ी सबै, अष्ट सिद्धि नव निद्धि ॥३३॥
हय गय औरौ सघन घन, छत्र भुजा फहराय।
ता सुख तें भिच्छा भली, नाम भजन दिन जाय ॥३४॥
नाम जपत कुष्टी भला, चुइ चुइ परै जो चाम।
कंचन देंह केहि काम की, जा मुख नाहीं नाम ॥३५॥
नाम लिया जिन सब लिया, सकल बेद का भेद।
बिना नाम नरकै परा, पढ़ता चारो बेद ॥३६॥
पारस रूपी नाम है, लोहा रूपी जीव।
बज जा पारस भेंटि है, तब जिव होसी सीव ॥३७॥
पारस रूपी नाम है, लोह रूप संसार।
पारस पाया पुरुष का, परखि परखि टकसार ॥३८॥
सुख के माथे सिल परै, (जो) नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुक्ख की, पल पल नाम रटाय ॥३९॥
कबीर सतगुरु नाम से, कोटि बिघन टरि जाय।
राई समान बसंदरा[2], केता काठ जराय ॥४०॥
लेने को सतनाम है, देने को अन दान।
तरने को आधीनता, बूड़न को अभिमान ॥४१॥
जैसो माया मन रम्यो, तैसो नाम रमाय।
तारा मंडल बेधि कै, तब अमरापुर जाय ॥४२॥
नाम पीव का छोड़ि के, करै आन का जाप।
बेस्या केरा पूत ज्यों, कहै कौन को बाप ॥४३॥

(१) जूती। (२) आग।

पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय।
चित चकमक लागे नहीं, धूआँ ह्वै ह्वै जाय ॥४४॥
नाम बिना बेकाम है, छप्पन कोटि बिलास।
का इंद्रासन बैठिबो, का बैकुंठ निवास ॥४५॥
लूटि सकै तो लूटि ले, सत्तनाम की लूटि।
पाछे फिरि पछताहुगे, प्रान जाहिं जब छूटि ॥४६॥

॥ सोरठा ॥

सतगुरु का उपदेस, सत्त नाम निज सार है।
यह निज मुक्ति संदेस, सुनो संत सत भाव से ॥४७॥
क्यों छूटै जम जाल, बहु बंधन जिव बंधिया।
काटैं दीनदयाल, कर्म फंद इक नाम से ॥४८॥
काटहु जम के फंद, जेहिं फंदे जग फंदिया।
कटै तो होय निसंक, नाम खड़्ग सतगुरु दियो ॥४९॥
तजै काग की देह, हंस दसा की सुरति पर।
मुक्ति सँदेसा येह, सत्त नाम परमान अस ॥५०॥
सत्त नाम बिस्वास, कर्म भर्म सब परिहरै।
सतगुरु पुरवै आस, जो निरास आसा करै ॥५१॥

॥सुमिरन का अंग ॥

सुमिरन से सुख होत है, सुमिरन से दुख जाय।
कह कबीर सुमिरन किये, साईं माहिं समाय ॥ १ ॥
राजा राना राव रँक, बड़ा जो सुमिरै नाम।
कह कबीर बड़ों बड़ा, जो सुमिरै निःकाम ॥ २ ॥
नर नारी सब नरक है, जब लगि देह सकाम।
कह कबीर सोइ पीव को, जो सुमिरै निःकाम ॥ ३ ॥
दुख में सुमिरन स करै, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे होय ॥ ४ ॥

सुख में सुमिरन ना किया, दुख में कीया याद।
कह कबीर ता दास की, कौन सुनै फरियाद॥ ५॥

सुमिरन की सुधि यों करो, जैसे कामी काम।
एक पलक बिसरै नहीं, निसु दिन आठो जाम॥ ६॥

सुमिरन की सुधि यों करो, ज्यों गागर पनिहार।
हालै डोलै सुरति में, कहै कबीर बिचार॥ ७॥

सुमिरन की सुधि यों करो, ज्यों सुरभी[1] सुत माहिं।
कह कबीर चारा चरत, बिसरत कबहूँ नाहिं॥ ८॥

सुमिरन की सुधि यों करो, जैसे दाम कँगाल।
कह कबीर बिसरै नहीं, पल पल लेहि सम्हाल॥ ९॥

सुमिरन से मन लाइये, जैसे नाद कुरंग[2]।
कह कबीर बिसरै नहीं, प्रान तजै तेहि संग॥१०॥

सुमिरन से मन लाइये, जैसे दीप पतंग।
प्रान तजै छिन एक में, जरत न मोड़ै अंग॥११॥

सुमिरन से मन लाइये, जैसे कीट भिरंग।
कबीर बिसरै आपको, होय जाय तेहि रंग॥१२॥

सुमिरन से मन लाइये, जैसे पानी मीन।
प्रान तजै पल बीछुरे, सत कबीर कहि दीन॥१३॥

सुमिरन सुरति लगाइ के, मुख तें कछू न बोल।
बाहर के पट देइ के, अंतर के पट खोल॥१४॥

माला फेरत मन खुसी, ता तें कछू न होय।
मन माला के फेरते, घट उँजियारी होय॥१५॥

माला फेरत जुग गया, फिरा न मनका फेर।
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर॥१६॥

अजपा सुमिरन घट बिषे, दीन्हा सिरजनहार।

---

(१) गऊ। (२) मृग।

ताही से मन लगि रहा, कहै कबीर बिचार ॥१७॥
कबीर माला मनहिं की, और संसारी भेख।
माला फेरे हरि मिलैं, तो गले रहट के देख ॥१८॥
कबीर माला काठ की, बहुत जतन का फेर।
माला स्वास उस्वास की, जा में गाँठ न मेर ॥१६॥
माला मो से लड़ि पड़ी, का फेरत हौ मोय।
मन कै माला फेरि ले, गुरु से मेला होय ॥२०॥
क्रिया करै अँगुरी गनै, मन धावै चहूँ ओर।
जेहि फेरे साईं मिलै, सो भया काठ कठोर ॥२१॥
माला फेरे कहा भयो, हृदय गाँठि नहिं खोय।
गुरु चरनन चित राचिये, तो अमरापुर जोय ॥२२॥
बाहर क्या दिखलाइये, अंतर जपिये नाम।
कहा महोला खलक से, पड़ा धनी से काम ॥२३॥
सहजेही धुन होत है, हर दम घट के माहिं।
सुरत सबद मेला भया, मुख की हाजत नाहिं ॥२४॥
माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दुइ दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं ॥२५॥
तन थिर मन थिर बचन थिर, सुरत निरत थिर होय।
कह कबीर इस पलक को, कलप न पावै कोय ॥२६॥
जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मरि जाय।
सुरत समानी सबद में, ताहि काल नहिं खाय ॥२७॥
जा की पूँजी स्वास है, छिन आवै छिन जाय।
ता को ऐसा चाहिये, रहै नाम लौ लाय ॥२८॥
कहता हूँ कहि जात हूँ, कहौं बजाये ढोल।
स्वासा खाली जात है, तीन लोक का मोल ॥२६॥
ऐसे मँहगे मोल का, एक स्वास जो जाय।

चौदह लोक न पटतरे, काहे धूर मिलाय ॥३०॥
कबीर छुधा है कूकरी, करत भजन में भंग।
या को टुकड़ा डारि करि, सुमिरन करो निसंक ॥३१॥
चिंता तो सतनाम की, और न चितवै दास।
जो कछु चितवै नाम बिनु, सोई काल की फाँस ॥३२॥
सत्तनाम को सुमिरते, उधरे पतित अनेक।
कह कबीर नहिं छाड़िये, सत्तनाम की टेक ॥३३॥
नाम जपत कन्या भली, साकट भला न पूत।
छेरी के गल गलथना, जा में दूध न मूत ॥३४॥
नाम जपत दरिद्री भला, टूटी घर की छानि।
कंचन मंदिर जारि दे, जहँ गुरु भक्ति न जान ॥३५॥
पाँच सखी पिउ पिउ करैं, छठा जो सुमिरै मन।
आई सुरत कबीर की, पाया नाम रतन ॥३६॥
तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझ में रही न हूँ।
वारी तेरे नाम पर, जित देखूँ तित तूँ ॥३७॥
सुमिरन मारग सहज का, सतगुरु दिया बताय।
स्वास उस्वास जो सुमिरता, इक दिन मिलसी आय ॥३८॥
माला स्वास उस्वास की, फेरै कोइ निज दास।
चौरासी भरमै नहीं, कटै करम की फाँस ॥३९॥
ज्ञान कथै बकि बकि मरै, कोई करै उपाय।
सतगुरु हम से यों कह्यो, सुमिरन करो समाय ॥४०॥
कबीर सुमिरन सार है, और सकल जंजाल।
आदि अंत मधि सोधिया, दूजा देखा ख्याल ॥४१॥
निज सुख सुमिरन नाम है, दूजा दुक्ख अपार।
मनसा बाचा कर्मना, कबीर सुमिरन सार ॥४२॥
थोड़ा सुमिरन बहुत सुख, जो करि जानै कोय।
सूत न लगै बिनावनी, सहजै अति सुख होय ॥४३॥

साईं यों मत जानियो, प्रीति घटै मम चित्त।
मरूँ तो तुम सुमिरत मरूँ, जीवत सुमिरूँ नित्त ॥४४॥

जप तप संजम साधना, सब सुमिरन के माहिं।
कबीर जानै भक्त जन, सुमिरन सम कछु नाहिं ॥४५॥

सहकामी सुमिरन करै, पावै उत्तम धाम।
निःकामी सुमिरन करै, पावै अबिचल नाम ॥४६॥

हम तुम्हरो सुमिरन करैं, तुम मोहिं चितवत नाहिं।
सुमिरन मन की प्रीति है, सो मन तुमहीं माहिं ॥४७॥

कबिरा हरि हरि सुमिरि ले, प्रान जाहिंगे छूटि।
घर के प्यारे आदमी, चलते लेंगे लूटि ॥४८॥

कबीर निर्भय नाम जपु, जब लगि दीवा बाति।
तेल घटे बाती बुझै, तब सोवो दिन राति ॥४९॥

जैसा माया मन रमै, तैसे नाम रमाय।
तारा मंडल छाड़ि कै, जहाँ नाम तहँ जाय ॥५०॥

कबीर चित चंचल भया, चहुँ दिसि लागी लाय[1]।
गुरु सुमिरन हाथे घड़ा, लीजै बेगि बुझाय ॥५१॥

कबीर मुख सोई भला, जा मुख निकसै नाम।
जा मुख नाम न नीकसै, सो मुख कौने काम ॥५२॥

सत्त नाम को सुमिरना, हँस करि भावै खीज[2]।
उलटा सुलटा नीपजै, खेत पड़ा ज्यों बीज ॥५३॥

स्वास सुफल सो जानिये, जो सुमिरन में जाय।
और स्वास योंही गये, करि करि बहुत उपाय ॥५४॥

कहा भरोसा देह का, बिनसि जाय छिन माहिं।
स्वास स्वास सुमिरन करो, और जतन कछु नाहिं ॥५५॥

जिवना थोरा ही भला, जो सत सुमिरन होय।
लाख बरस का जीवना, लेखे धरै न कोय ॥५६॥

(१) आग। (२) चाहे हँसते हुए चाहे खिजलाहट के साथ।

बिना साच सुमिरन नहीं, बिन भेदी भक्ति न सोय ।
पारस में परदा रहा, कस लोहा कंचन होय ॥५७॥
कंचन केवल गुरु भजन, दूजा काँच कथीर ।
झूठा जाल जंजाल तजि, पकड़ो साच कबीर ॥५८॥
हृदय सुमिरनी नाम की, मेरा मन मसगूल[1] ।
छबि लागे निरखत रहौं, मिटि गया संसय सूल ॥५९॥
सुमिरन का हल जोतिये, बीजा नाम जमाय ।
खंड ब्रह्मंड सूखा पड़े, तहू न निस्फल जाय ॥६०॥
देखा देखी सब कहै, भोर भये हरि नाम ।
अर्ध रात कोइ जन कहै, खानाजाद गुलाम ॥६१॥
नाम रटत इस्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन ।
सुरत सबद एकै भया, जलही ह्वैगा मीन ॥६२॥
कबीर धारा अगम की, सतगुरु दई लखाय ।
उलटि ताहि सुमिरन करो, स्वामी संग मिलाय ॥६३॥

॥ शब्द का अंग ॥

कबीर सबद सरीर में, बिन गुन[2] बाजै ताँत ।
बाहर भीतर रमि रहा, ता तें छूटी भ्रांति ॥ १ ॥
जो जन खोजी सबद का, धन्य संत है सोय ।
कह कबीर सबदै गहे, कबहुँ न जाय बिगोय ॥ २ ॥
सबद सबद बहु अंतरा, सबद सार का सीर ।
सबद सबद का खोजना, सबद सबद का पीर ॥ ३ ॥
सबद हबद बहु अंतरा, सार सबद चित देय ।
जा सबदै साहिब मिलै, सोई सबद गहि लेय ॥ ४ ॥
सबद सबद सब कोइ कहै, वो तो सबद बिदेह ।
जिभ्या पर आवै नहीं, निरखि परखि करि देह ॥ ५ ॥

(१) लगा हुआ । (२) रस्सी ।

एक सबद सुखरास है, एक सबद दुखरास।
एक सबद बंधन कटै, एक सबद गल फाँस ॥ ६ ॥
सबद सबद सब कोइ कहै, सबद के हाथ न पाँव।
एक सबद औषधि करै, एक सबद करै घाव ॥ ७ ॥
सीखै सुनै बिचारि लै, ताहि सबद सुख देय।
बिना समझै सबदै गहै, कछू न लाहा लेय ॥ ८ ॥
सबद हमारा आदि का, पल पल करिये याद।
अंत फलैगी माँहि की, बाहर की सब बाद ॥ ९ ॥
सबदहि मारे मरि गये सबदहि तजिया राज।
जिन जिन सबद पिछानिया, सरिया तिन का काज ॥१०॥
सबद गुरू को कीजिये बहुतक गुरू लबार।
अपने अपने लोभ को, ठौर ठौर बटमार ॥११॥
सबद हमारा हम सबद के, सबदहि लेय परक्ख।
जो तूँ चाहै मुक्ति को, अब मत जाय सरक्क ॥१२॥
सबद हमारा हम सबद के सबद ब्रह्म का रूप।
जो चाहै दीदार को परख सबद का रूप ॥१३॥
एक सबद गुरुदेव का जा का अनंत बिचार।
पंडित थाके मुनि जना, बेद न पावै पार ॥१४॥
सबद बिना स्रुति आँधरी, कहो कहाँ को जाय।
द्वार न पावै सबद का, फिरि फिरि भटका खाय ॥१५॥
यही बड़ाई सबद की, जैसे चुम्बक भाय।
बिना सबद नहिं ऊबरै, केता करै उपाय ॥१६॥
सही टेक है तासु की, जा के सत्तगुरु टेक।
टेक निबाहे देह भरि, रहै सबद मिलि एक ॥१७॥
काल फिरै सिर ऊपरे, जीवहिं नजरि न आइ।
कह कबीर गुरु सबद गहिं, जम से जीव बचाइ ॥१८॥

ऐसा मारा सबद का, मुआ न दीसै कोय।
कह कबीर सो ऊबरै, धड़ पर सीस न होय ॥१६॥
सबद बराबर धन नहीं, जो कोइ जानै बोल।
हीरा तो दामों मिलै, सबदहिं मोल न तोल ॥२०॥
सबद दुराया ना दुरै, कहौं जो ढोल बजाय।
जो जन होवै जौहरी, लेहै सीस चढ़ाय ॥२१॥
सबद पाय स्रुति राखही, सो पहुँचै दरबार।
कह कबीर तहँ देखई, बैठे पुरुष हमार ॥२२॥
औरै दारू सब करी, पै सुभाव की नाहिं।
सो दारू सतगुरु करी, रहै सबद के माहिं ॥२३॥
सब्द उपदेस जो मैं कहूँ, जो कोइ मानै संत।
कहै कबीर बिचारि के, ताहि मिलाओं कंत ॥२४॥
मता हमारा मंत्र है, हम सा होय सो लेय।
सबद हमारा कल्प-तरु, जो चाहै सो देय ॥२५॥
रैन समानी भानु में, भानु अकासे माहिं।
अकास समाना सबद में, सबद परे कछु नाहिं ॥२६॥
सबद कहाँ से उठत है, कहँ को जाइ समाय।
हाथ पाँव वा के नहीं, कैसे पकरा जाय ॥२७॥
सहस कँवल तें उठत है, सुन्नहिं जाय समाय।
हाथ पाँव वा के नहीं, स्रुति तें पकरा जाय ॥२८॥
सबद कहाँ तें आइया, कहाँ सबद का भाव।
कहाँ सबद का सीस है, कहाँ सबद का पाँव ॥२६॥
सबद ब्रह्मंड तें आइया, मध्य सबद का भाव।
ज्ञान सबद का सीस है, अज्ञान सबद का पाँव ॥३०॥
सीतल सबद उचारिये, अहं आनिये नाहिं।
तेरा प्रीतम तुज्झ में, सत्रू भी तुज्झ माहिं ॥३१॥

सबद भेद तब जानिये, रहै सबद के माहिं।
सबदै सबद प्रगट भया, दूजा दीखै नाहिं ॥३२॥
सोई सकद निज सार है, जो गुरु दिया बताय।
बलिहारी वा गुरू की, सिष्य बिगोय[1] न जाय ॥३३॥
वह मोती मत जानियो, पुहै पोत के साथ।
यह तो मोती सबद का, बेधि रहा सब गात ॥३४॥
बलिहारी वहि दूध की, जा में निकसत घीव।
आधी साखि कबीर की, चार बेद को जीव ॥३५॥
सबद अहै गाहक नहीं, बस्तु सो गरुआ मोल।
बिना दाम को मानवा, फिरता डाँवाँडोल ॥३६॥
रैनि तिमिर नासत भयो, जबही भानु उगाय।
सार सबद के जानते, कर्म भर्म मिटि जाय ॥३७॥
जंत्र मंत्र सब झूठ है, मत भरमो जग कोय।
सार सबद जाने बिना, कागा हंस न होय ॥३८॥
सत्त सबद निज जानि कै, जिन कीन्हा परतीति।
काग कुमति तजि हंस ह्वै, चले सो भव जल जीति ॥३९॥
सबद खोजि मन बस करै, सहज जोग है येहि।
सत्त सबद निज सार है, यह तो झूठी देंहि ॥४०॥
सार सबद जाने बिना जिव परलै में जाय।
काया माया थिर नहीं, सबद लेहु अरथाय ॥४१॥
कर्म फंद जग फंदिया, जप तप पूजा ध्यान।
जेहि सबद तें मुक्ति ह्वै, सो न परै पहिचान ॥४२॥
सतजुग त्रेता द्वापरा, यहि कलिजुग अनुमान।
सार सबद इक साच है, और झूठ सब ज्ञान ॥४३॥
पृथ्वी अप[2] हूँ तेज नहिं, नहीं वायु आकास।

---

(१) भरम या धोखे में न पड़ जाय। (२) जल।

अच्छलपच्छ तहँ ह्वै रहै, सत्त सबद परकास ॥४४॥

॥ सोरठा ॥

सतगुरु सबद प्रमान, अनहद बानी ऊचरै ।
और झूठ सब ज्ञान, कहै कबीर बिचारि कै ॥४५॥
ज्ञानी सुनहु सँदेस, सबद बिबेकी पेखिया ।
कह्यौ मुक्तिपुर देस, तीनि लोक के बाहिरे ॥४६॥
मन तहँ गगन समाय, धुनि सुनि सुनि कै मगन ह्वै ।
नहिं आवै नहिं जाय, सुन्न सबद थिति पावही ॥४७॥
ज्ञानी करहु बिचार, सतगुरु ही से पाइये ।
सत्त सबद निज सार, और सबै बिस्तार है ॥४८॥
जग में बहु परिपंच, ता में जीव भुलान सब ।
नहिं पावै कोइ संच, सार सबद जाने बिना ॥४९॥
गहै सबद निज मूल, सिंधहिं बुंद समान है ।
सूच्छम में अस्थूल, बीज बृच्छ बिस्तार ज्यों ॥५०॥

॥ साखी ॥

जाप मरै अजपा मरै, अनहद हूँ मरि जाय ।
सुरत समानी सबद में, ता को काल न खाय ॥५१॥

॥ बिनती का अंग ॥

बिनवत हौं कर जोरि कै, सुनिये कृपा-निधान ।
साध सँगति सुख दीजिये, दया गरीबी दान ॥ १ ॥
जो अब के सतगुरु मिलैं, सब दुख आखौं[1] रोय ।
चरनों ऊपर सीस धरि, कहौं जो कहना होय ॥ २ ॥
मेरे सतगुरु मिलैंगे, पूछैंगे कुसलात ।
आदि अंत की सब कहौं, उर अंतर की बात ॥ ३ ॥
सुरति करो मेरे साइयाँ, हम हैं भवजल माहिं ।
आपे ही बहि जायँगे, जो नहिं पकरो बाहिं ॥ ४ ॥

(१) कहूँ ।

क्या मुख लै बिनती करौं, लाज आवत है मोहि।
तुम देखत औगुन करौं, कैसे भावौं तोहिं।
सतगुरु तोहि बिसारि कै, का के सरनै जायँ।
सिव बिरंचि मुनि नारदा, हिरदे नाहिं समायँ॥ ६॥
मैं अपराधी जनम का, नख सिख भरा बिकार।
तुम दाता दुख-भंजना, मेरी करो सम्हार॥ ७॥
अवगुन मेरे बाप जी, बकस गरीब-निवाज।
जो मैं पूत कपूत हौं, तऊ पिता को लाज॥ ८॥
औगुन किये तो बहु किये, करत न मानी हार।
भावै बंदा बकसिये, भावै गरदन मार॥ ९॥
जो मैं भूल बिगाड़िया, ना करु मैला चित्त।
साहिब गरुआ लोड़िये, नफर बिगाड़ै नित्त॥१०॥
साईं केरा बहुत गुन, औगुन कोई नाहिं।
जो दिल खोजौं आपना, सब औगुन मुझ माहिं॥११॥
साहिब तुम जनि बीसरो, लाख लोग लगि जाहिं।
हम से तुमरे बहुत हैं, तुम सम हमरे नाहिं॥१२॥
औसर बीता अल्प तन, पीव रहा परदेस।
कलँक उतारो साइयाँ, भानो भरम अँदेस॥१३॥
कर जोरे बिनती करौं, भवसागर आपार।
बंदा ऊपर मिहर करि, आवागवन निवार॥१४॥
अंतरजामी एक तुम, आतम के आधार।
जो तुम छोड़ौ हाथ तें, कौन उतारै पार॥१५॥
भवसागर भारी महा, गहिरा अगम अगाह[1]।
तुम दयाल दाया करो, तब पाओं कछु थाह॥१६॥
साहिब तुमहिं दयाल हो, तुम लगि मेरी दौर।

(१) अथाह।

अछलपच्छ तहँ ह्वै रहै, सत्त सबद परकास ॥४४॥

॥ सोरठा ॥

सतगुरु सबद प्रमान, अनहद बानी ऊचरै।
और झूठ सब ज्ञान, कहै कबीर बिचारि कै ॥४५॥
ज्ञानी सुनहु सँदेस, सबद बिबेकी पेखिया।
कहौ मुक्तिपुर देस, तीनि लोक के बाहिरे ॥४६॥
मन तहँ गगन समाय, धुनि सुनि सुनि कै मगन है।
नहिं आवै नहिं जाय, सुन्न सबद थिति पावही ॥४७॥
ज्ञानी करहु बिचार, सतगुरु ही से पाइये।
सत्त सबद निज सार, और सबै बिस्तार है ॥४८॥
जग में बहु परिपंच, ता में जीव भुलान सब।
नहिं पावै कोइ संच, सार सबद जाने बिना ॥४९॥
गहै सबद निज मूल, सिंधहिं बुंद समान है।
सूच्छम में अस्थूल, बीज बृच्छ बिस्तार ज्यों ॥५०॥

॥ साखी ॥

जाप मरै अजपा मरै, अनहद हूँ मरि जाय।
सुरत समानी सबद में, ता को काल न खाय ॥५१॥

॥ बिनती का अंग ॥

बिनवत हौं कर जोरि कै, सुनिये कृपा - निधान।
साध सँगति सुख दीजिये, दया गरीबी दान ॥ १ ॥
जो अब के सतगुरु मिलैं, सब दुख आखौं[1] रोय।
चरनों ऊपर सीस धरि, कहौं जो कहना होय ॥ २ ॥
मेरे सतगुरु मिलैंगे, पूछैंगे कुसलात।
आदि अंत की सब कहौं, उर अंतर की बात ॥ ३ ॥
सुरति करौ मेरे साइयाँ, हम हैं भवजल माहिं।
आपे ही बहि जायँगे, जो नहिं पकरौ बाहिं ॥ ४ ॥

---

(१) कहूं।

क्या मुख ले बिनती करौं, लाज आवत है मोहिं।
तुम देखत औगुन करौं, कैसे भावौं तोहिं ॥ ५ ॥
सतगुरु तोहि बिसारि कै, का के सरनै जायँ।
सिव बिरंचि मुनि नारदा, हिरदे नाहिं समायँ ॥ ६ ॥
मैं अपराधी जनम का, नख सिख भरा बिकार।
तुम दाता दुख-भंजना, मेरी करो सम्हार ॥ ७ ॥
अवगुन मेरे बाप जी, बकस गरीब - निवाज।
जो मैं पूत कपूत हौं, तऊ पिता को लाज ॥ ८ ॥
औगुन किये तो बहु किये, करत न मानी हार।
भावै बंदा बकसिये, भावै गरदन मार ॥ ६ ॥
जो मैं भूल बिगाड़िया, ना करु मैला चित्त।
साहिब गरुआ लोड़िये, नफर बिगाड़ै नित्त ॥१०॥
साईं केरा बहुत गुन, औगुन कोई नाहिं।
जो दिल खोजौं आपना, सब औगुन मुझ माहिं ॥११॥
साहिब तुम जनि बीसरो, लाख लोग लगि जाहिं।
हम से तुमरे बहुत हैं, तुम सम हमरे नाहिं ॥१२॥
औसर बीता अल्प तन, पीव रहा परदेस।
कलँक उतारो साइयाँ, भानो भरम अँदेस ॥१३॥
कर जोरे बिनती करौं, भवसागर आपार।
बंदा ऊपर मिहर करि, आवागवन निवार ॥१४॥
अंतरजामी एक तुम, आतम के आधार।
जो तुम छोड़ो हाथ तें कौन उतारै पार ॥१५॥
भवसागर भारी महा, गहिरा अगम अगाह[1]।
तुम दयाल दाया करो, तब पाओं कछु थाह ॥१६॥
साहिब तुमहिं दयाल हो, तुम लगि मेरी दौर।

---

(१) अथाह।

जैसे काग जहाज को, सूझै और न ठौर ॥१७॥
साइँ तेरा कछु नहीं, मेरा होय अकाज।
बिरद[1] तुम्हारे नाम की, सरन परे की लाज ॥१८॥
मेरा मन जो तोहिं से, यों जो तेरा होय।
अहरन ताता लोह ज्यों, संधि लखै नहिं कोय[2] ॥१९॥
मेरा मन जो तोहिं से, तेरा मन कहि और।
कह कबीर कैसे निभै, एक चित्त दुइ ठौर ॥२०॥
मुझ में औगुन तुज्झ गुन, तुझ गुन औगुन मुज्झ।
जो मैं बिसरौं तुज्झ को, तू मत बिसरै मुज्झ ॥२१॥
मन परतीत न प्रेम रस, ना कछु तन में ढंग।
ना जानौं उस पीव से, क्योंकर रहसी रंग ॥२२॥
जिन को साइँ रंगि दिया, कबहुँ न होहिं कुरंग।
दिन दिन बानी आगरी[3], चढ़ै सवाया रंग ॥२३॥
मेरा मुझ में कछु नहीं, जो कछु है सो तुज्झ।
तेरा तुझ को सौंपते, का लागत है मुज्झ ॥२४॥
औगुनहारा गुन नहीं, मन का बड़ा कठोर।
ऐसे समरथ सतगुरू, ताहि लगावैं ठौर ॥२५॥
तुम तो समरथ साइयाँ, दृढ़ कर पकरो बाहिं।
धुरहीं लै पहुँचाइयो, जनि छाड़ो मग माहिं ॥२६॥
कबीर करत है बीनती सुनो संत चित लाय।
मारग सिरजनहार का, दीजै मोहिं बताय ॥२७॥
सतगुरु बड़े दयाल हैं, संतन के आधार।
भवसागरहि अथाह से, खेइ उतारैं पार ॥२८॥
भक्ति दान मोहिं दीजिये, गुरु देवन के देव।
✓ और नहीं कछु चाहिये, निसु दिन तेरी सेव ॥२९॥

---

(१) महिमा। (२) जब दोनों टुकड़े लोहे के गरम हों तब बेमालूम जोड़ लग सकता है। (३) उग्र।

उपदेश का अंग

जो तो को काँटा बुवै, ताहि बोव फूलतू।
तोहि फूल को फूल है, वा को है तिरसूल ॥ १ ॥
दुर्बल को न सताइये, जा की मोटी हाय।
बिना जीव की स्वास से[1], लोह भसम ह्वै जाय ॥ २ ॥
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगा सुख होत है, और ठगे दुख होय ॥ ३ ॥
या दुनिया में आइ के, छाड़ि देइ तू ऐंठ।
लेना होइ सो लेइ ले, उठी जात है पैंठ ॥ ४ ॥
खाय पकाय लुटाइ ले, हे मनुवाँ मिहमान।
लेना होय सो लेइ ले, यही गोय[2] मैदान ॥ ५ ॥
लेना होय सो लेइ ले, कही सुनी मत मान।
कही सुनी जुग जुग चली, आवा गवन बंधान ॥ ६ ॥
ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपहुँ सीतल होय ॥ ७ ॥
जग में बैरी कोइ नहीं, जो मन सीतल होय।
या आपा को डारि दे, दया करै सब कोय ॥ ८ ॥
हस्ती चढ़िये ज्ञान की, सहज दुलीचा डारि।
स्वान रूप संसार है, भूँसन दे झख मारि ॥ ९ ॥
बाजन देहू जतरी, कलि कुकही मत छेड़।
तुझे पराई क्या परी, अपनी आप निबेड़ ॥१०॥
कबीर काहे को डरै, सिर पर सिरजनहार।
हस्ती चढ़ि डुरिये नहीं, कूकर भूँसै हजार ॥११॥
आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक।
कहै कबीर नहिं उलटिये, वही एक की एक ॥१२॥

(१) भाथी या धौकनी जो बिना जीव की होती है उसकी हवा से लोहा गल जाता है। (२) गेंद।

॥ सोरठा ॥

गारी मोटा[1] ज्ञान, जो रंचक उर में जरै।
कोटि सँवारै काम, बैरि उलटि पाँयन परै ॥१३॥
गारी ही से ऊपजै, कलह कष्ट औ मीच।
हारि चलै सो साधु है, लागि मरै सो नीच ॥१४॥
हरिजन तो हारा भला, जीतन दे संसार।
हारा सतगुरु से मिलै, जीता जम की लार ॥१५॥
जेता घट तेता मता, घट घट और सुभाव।
जा घट हार न जीत है, ता घट ज्ञान समाव ॥१६॥
जैसा अन जल खाइये, तैसा ही मन होय।
जैसा पानी पीजिये, तैसी बानी सोय ॥१७॥
माँगन मरन समान है, मति कोइ माँगो भीख।
माँगन तें मरना भला, यह सतगुरु की सीख ॥१८॥
उदर समाता माँगि लै, ता को नाहीं दोष।
कह कबीर अधिका गहै, ता की गती न मोष ॥१९॥
उदर समाता अन्न लै, तनहिं समाता चीर।
अधिकहिं संग्रह ना करै, ता का नाम फकीर ॥२०॥
कथा कीरतन कलि विषे, भौसागर की नाव।
कह कबीर जग तरन को, नाहीं और उपाव ॥२१॥
कथा कीरतन छोड़ करि, करै जो और उपाय।
कह कबीर ता साध के, पास कोई मत जाय ॥२२॥
कथा कीरतन करन की, जा के निसु दिन रीति।
कह कबीर वा दास से, निस्चय कीजै प्रीति ॥२३॥
कथा कीरतन रात दिन, जा के उद्यम येह।
कह कबीर ता साधु की, हम चरनन की खेह ॥२४॥

(१) बड़ा।

कथा करो करतार की, निसु दिन साँझ सकार।
काम कथा को परिहरो, कहै कबीर बिचार ॥२५॥
काम कथा सुनिये नहीं, सुन करि उपजै काम।
कहै कबीर बिचार करि, बिसर जात है नाम ॥२६॥
कबीर संगी साधु का, दल आया भरपूर।
इन्द्रिन को तब बाँधिया, या तन कीया धूर ॥२७॥
कहते को कहि जान दे, गुरु की सीख तु लेइ।
साकट जन औ स्वान को, फिर जवाब मत देइ ॥२८॥
जो कोइ समझै सैन में, ता से कहिये बैन।
सैन बैन समझै नहीं, ता से कछु नहिं कहन ॥२९॥
बहते को बहि जान दे, मत पकड़ावे ठौर।
समझाया सनजै नहीं, दे दुइ धक्के और ॥३०॥
बहते को मत बहन दे, कर गहि ऐंचहु ठौर।
कहा सुना मानै नहीं, बचन कहो दुइ और ॥३१॥
बन्दे तू कर बन्दगी, तो पावे दीदार।
औसर मानुष जन्म का, बहुरि न बारम्बार ॥३२॥
मन राजा नायक भया, टाँडा लादा जाय।
हैहै हैहै है रहो, पूँजी गई बिलाय ॥३३॥
जीवत कोइ समझै नहीं, मुआ न कहै सँदेस।
तन मन से परिचय नहीं, ता को क्या उपदेस ॥३४॥
जेहि जेवरि तें जग बँधा, तूँ जनि बँधै कबीर।
जासी आटा लोन ज्यों, सोन समान सरीर ॥३५॥
जिन गुरु जैसा जानिया, तिन को तैसा लाभ।
ओसे प्यास न भागसी, जब लगि धसै न आब[1] ॥३६॥
जिभ्या को दे बंधने, बहु बोलना निवारि।

---

(१) पानी।

सो पारख से संग करु, गुरुमुख सबद बिचारि ॥३७॥
जा की जिभ्या बंद नहिं, हिरदे नाहीं साच।
ता के संग ना लागिये, घालै बटिया काच[1] ॥३८॥
सकल दुरमती दूर करि, आछो जनम बनाव।
काग गमन गति छाड़ि दे, हंस गमन गति आव ॥३९॥
कर बंदगी बिबेक की, भेष धरे सब कोय।
वह बँदगी बहि जान दे, जहँ सबद बिबेक न होय ॥४०॥
साधु भया तो क्या भया, बोलै नाहिं बिचार।
हतै पराई आतमा, जीभ बाँधि तरवार ॥४१॥
मधुर बचन है औषधी, कटुक बचन है तीर।
स्रवन द्वार है संचरै, सालै सकल सरीर ॥४२॥
बोलत ही पहिचानिये, साहु चोर को घाट।
अंतर की करनी सबै, निकसै मुख की बाट ॥४३॥
जिन ढूँढ़ा तिन पाइया, गहिरे पानी पैठि।
जो बौरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठि ॥४४॥
ज्ञान रतन की कोठरी, चुप करि दीजै ताल[2]।
पारख आगे खोलिये, कूंजी बचन रसाल ॥४५॥
साध संत तेई जना, जिन माना बचन हमार।
आदि अंत उत्पति प्रलय, देखहु दृष्टि पसार ॥४६॥
पानी प्यावत क्या फिरै, घर घर सायर बारि।
जो जन तिरषावंत है, पीवैगा झख मारि ॥४७॥
जो तू चाहे मुज्झ को, छाड़ि सकल की आस।
मुझ ही ऐसा ह्वै रहै, सब सुख तेरे पास ॥४८॥
चतुराई क्या कीजिये, जो नहिं सबद समाय।
कोटिक गुन सूवा पढ़ै, अंत बिलाई खाय ॥४९॥

(१) कच्चे रास्ते में पानी कुराह में गिरा देगा। (२) ताला।

अलमस्त फिरे क्या होत है, सुरत लीजिये धोय।
चतुराई नहिं छूटसी, सुरत सबद में पोय ॥५०॥
पढ़ना गुनना चातुरी, यह तो बात सहल।
काम दहन मन बसि करन, गगन चढ़न मुस्कल ॥५१॥
पढ़ि पढ़ि के पत्थर भये, लिखि लिखि भये जो ईंट।
कबीर अंतर प्रेम की, लागी नेक न छींट ॥५२॥
नाम भजो मन बसि करो, यही बात है तंत।
काहे को पढ़ि पचि मरो, कोटिन ज्ञान गिरंथ ॥५३॥
कबीर आधी साखि यह, कोटि ग्रंथ करि जान।
नाम सत्त जग झूठ है, सुरत सबद पहिचान ॥५४॥
करता था तो क्यों रहा, अब करि क्यों पछिताय।
बोवे पेड़ बबूल का, आम कहाँ तें खाय ॥५५॥

॥ सामर्थ का अंग ॥

साहिब से सब होत है, बंदे तें कछु नाहिं।
राई तें पर्बत करै, पर्बत राई नाइँ[1] ॥ १ ॥
बहन बहंता थल करै, थल कर बहन बहोय।
साहिब हाथ बड़ाइया, जस भावै तस होय ॥ २ ॥
साहिब सा समरथ नहीं, गरुआ गहिर गँभीर।
औगुन छाड़ै गुन गहै, छिनक उतारै तीर ॥ ३ ॥
ना कछु किया न करि सका, ना करने जोग सरीर।
जो कछु किया साहिब किया, ता तें भया कबीर ॥ ४ ॥
जो कछु किया सो तुम किया, मैं कछु कीया नाहिं।
कहौं कहीं जो मैं किया, तुमहीं थे मुझ माहिं ॥ ५ ॥
कीया कछू न होत है, अनकीया ही होय।
कीया जो कछु होय तो, करता औरै कोय ॥ ६ ॥

(१) तुल्य।

जिस नहिं कोई तिसहि तूँ, जिस तूँ तिस सब होय ।
दरगह तेरी साइयाँ, मेटि न सक्कै कोय ॥ ७ ॥
इत कूआ उत बावड़ी, इत उत थाह अथाह ।
दुहूँ दिसा फनि[1] फन कढ़े, समरथ पार लगाहि ॥ ८ ॥
घट समुद्र लखि ना परै, उट्ठै लहर अपार ।
दिल दरिया समरथ बिना, कौन उतारै पार ॥ ९ ॥
अबरन को क्या बरनिये, मो पै बरनि न जाय ।
अबरन बरन तें बाहिरा, करि करि थका उपाय ॥१०॥
मो में इतनी सक्ति कहँ, गाऊँ गला पसार ।
बंदे को इतनी घनी, पड़ा रहै दरबार ॥११॥
साईं तुझ से बाहिरा, कौड़ी नाहिं बिकाय ।
जा के सिर पर तू धनी, लाखों मोल कराय ॥१२॥
साईं मेरा बानिया, सहज करै ब्योपार ।
बिन डाँड़ी बिन पालरे, तौलै सब संसार ॥१३॥
धन धन साहिब तूँ बड़ा, तेरी अनुपम रीत ।
सकल भूप सिर साइयाँ, है कर रहा अतीत ॥१४॥
बालक रूपी साइयाँ, खेलै सब घट माहिं ।
जो चाहै सो करत है, भय काहू का नाहिं ॥१५॥

निज करता के निर्णय का अंग

अछै पुरुष एक पेड़ है, निरंजन वा की डार ।
तिरदेवा साखा भये, पात भया संसार ॥ १ ॥
नाद बिन्दु तें अगम अगोचर पाँच तत्त तें न्यार ।
तीन गुनन तें भिन्न है, पुरुष अलक्ख अपार ॥ २ ॥
तीन गुनन की भक्ति में, भूलि पर्यो संसार ।
कह कबीर निज नाम बिनु, कैसे उतरै पार ॥ ३ ॥

---

(१) साँप ।

हरा होय सूखै सही, यों तिरगुन बिस्तार।
प्रथमहिं ता को सुमिरिये, जा का सकल पसार ॥ ४ ॥
सबद सुरति के अन्तरे, अलख पुरुष निर्बान।
लखनेहारा लखि लिया, जा को है गुरु ज्ञान ॥ ५ ॥
हम तो लखा तिहुँ लोक में, तुम क्यों कहौ अलेख।
सार सबद जाना नहीं, धोखे पहिरा भेख ॥ ६ ॥
राम कृस्न अवतार हैं, इन की नाहीं माँड।
जिन साहिब स्रिष्टी किया, (सो) किनहुँ न जाया राँड ॥ ७ ॥
संपुट माहिं समाइया, सो साहिब नहिं होय।
सकल माँड में रमि रहा, मेरा साहिब सोय ॥ ८ ॥
साहिब मेरा एक है, दूजा कहा न जाय।
दूजा साहिब जो कहूँ, साहिब खरा रिसाय ॥ ९ ॥
जा के मुँह माथा नहीं, नाहीं रूप अरूप।
पुहुप बास तें पातरा, ऐसा तत्त्व अनूप ॥१०॥
देही माहिं बिदेह है, साहिब सुरत सरूप।
अनँत लोक में रमि रहा, जा के रंग न रूप ॥११॥
बूझो करता आपना, मानो बचन हमार।
पाँच तत्व के भीतरे, जा का यह संसार ॥१२॥
चार भुजा के भजन में, भूलि परे सब संत।
कबीर सुमिरै तासु को, जाके भुजा अनंत ॥१३॥
निबल सबल जो जानि कै, नाम धरा जगदीस।
कहै कबीर जनमै मरै, ताहि धरूँ नहिं सीस ॥१४॥
जनम मरन से रहित है, मेरा साहिब सोय।
बलिहारी वहि पीव की, जिन सिरजा सब कोय ॥१५॥
समुँद पाटि लंका गयो, सीता को भरतार।
ताहि अगस्त अचै[1] गयो, इन में को करतार ॥१६॥

(१) कथा है कि अगस्त मुनि ने समुद्र का पानी सब पी लिया था।

गिरवर धार्‌यो कृस्न जी, द्रोनागिरि हनुमंत ।
सेस नाग सब सृष्टि सहारी, इन में को भगवंत ॥१७॥
राम कृस्न को जिन किया, सो तो करता न्यार ।
अंधा ज्ञान न बूझई, कहै कबीर बिचार ॥१८॥

घट मठ (सर्व घट व्यापी) का अंग

कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूँढ़ै बन माहिं ।
ऐसे घट में पीव है, दुनियाँ जानै नाहिं ॥ १ ॥
तेरा साइँ तुज्झ में, ज्यों पुहुपन में बास ।
कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिरि फिरि ढूँढ़ै घास ॥ २ ॥
जा कारन जग ढूँढिया, सो तो घट ही माहिं ।
परदा दीया भरम का, ता तें सूझै नाहिं ॥ ३ ॥
समझै तो घर में रहै, परदा पलक लगाय ।
तेरा साहिब तुज्झ में, अंत कहूँ मत जाय ॥ ४ ॥
सब घट मेरा साइयाँ, सूनी सेज न कोय ।
बलिहारी वा घट्ट की, जा घट परघट होय ॥ ५ ॥
जेता घट तेता मता, बहु बानी बहु भेख ।
सब घट व्यापक ह्वै रहा, सोई आप अलेख ॥ ६ ॥
भूला भूला क्या फिरै, सिर पर बँध गइ बेल ।
तेरा साइँ तुज्झ में, ज्यों तिल माहीं तेल ॥ ७ ॥
ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आगि ।
तेरा साइँ तुज्झ में, जागि सकै तो जागि ॥ ८ ॥
ज्यों नैनन में पूतरी, यों खालिक घट माहिं ।
मूरख लोग न जानहीं, बाहर ढूँढ़न जाहिं ॥ ९ ॥
पुहुप मध्य ज्यों बास है, व्यापि रहा सब माहिं ।
संतों माहीं पाइये, और कहूँ कछु नाहिं ॥१०॥

पावक रूपी साइयाँ सब घट रहा समाय।
चित चकमक लागै नहीं, ता तें बुझि बुझि जाय ॥११॥

समदृष्टी का अंग

समदृष्टी सतगुरु किया, भर्म किया सब दूर।
भया उँजारा ज्ञान का, ऊगा निर्मल सूर ॥ १ ॥
समदृष्टी सतगुरु किया, दीया अबिचल ज्ञान।
जहँ देखौं तहँ एकही, दूजा नाहीं आन ॥ २ ॥
समदृष्टी सतगुरु किया, मेटा भरम बिकार।
जहँ देखौं तहँ एकही, साहिब का दीदार ॥ ३ ॥
समदृष्टी तब जानिये सीतल समता होय।
सब जीवन की आतमा, लखै एक सी सोय ॥ ४ ॥

भेदी का अंग

कबीर भेदी भक्त से, मेरा मन पतियाय।
सेरी पावै सबद की निर्भय आवै जाय ॥ १ ॥
भेदी जानै सबै गुन अनभेदी क्या जान।
कै जानै गुरु पारखी, कै जा के लागा बान ॥ २ ॥
भेद ज्ञान साबुन भया, सुमिरन निर्मल नीर।
अंतर धोई आतमा, धोया निर्गुन चीर ॥ ३ ॥
भेद ज्ञान तौ लौं भला, जौ लौं मेल न होय।
परम जोति प्रगटै जहाँ, तहँ बिकल्प नहिं होय ॥ ४ ॥

परिचय का अंग

पिउ परिचय तब जानिये, पिउ से हिलमिल होय।
पिउ की लाली मुख पड़ै, परगट दीसै सोय ॥ १ ॥
लाली मेरे लाल की, जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गइ लाल ॥ २ ॥
जिन पावन भुइँ बहु फिरे, घूमे देस बिदेस।

पिया मिलन जब होइया, आँगन भया बिदेस ॥ ३ ॥
उलटि समाना आप में, प्रगटी जोति अनंत ।
साहिब सेवक एक सँग, खेलैं सदा बसंत ॥ ४ ॥
जोगी हुआ झलक लगी, मिटि गया ऐंचा तान ।
उलटि समाना आप में, हूआ ब्रह्म समान ॥ ५ ॥
हम बासी वा देस के, जहँ सत्त पुरुष की आन ।
दुख सुख कोइ ब्यापै नहीं, सब दिन एक समान ॥ ६ ॥
हम बासी वा देस के, जहँ बारह मास बिलास ।
प्रेम झिरै बिगसै कँवल, तेज पुंज परकास ॥ ७ ॥
संसय करौं न मैं डरौं, सब दुख दिये निवार ।
सहज सुन्न में घर किया, पाया नाम अधार ॥ ८ ॥
बिन पाँवन का पंथ है, बिन बस्ती का देस ।
बिना देह का पुरुष है, कहै कबीर सँदेस ॥ ९ ॥
नोन गला पानी मिला, बहुरि न भरिहै गौन ।
सुरत सबद मेला भया, काल रहा गहि मौन ॥१०॥
हिलि मिलि खेलौं सबद से, अंतर रही न रेख ।
समझे का मति एक है, क्या पंडित क्या सेख ॥११॥
अलख लखा लालच लगा, कहत न आवै बैन ।
निज मन धसा स्वरूप में, सतगुरु दीन्हीं सैन ॥१२॥
कहना था सो कहि दिया, अब कछु कहा न जाय ।
एक रहा दूजा गया, दरिया लहर समाय ॥१३॥
पिंजर प्रेम प्रकासिया, जागी जोति अनंत ।
संसय छूटा भय मिटा, मिला पियारा कंत ॥१४॥
उनमुनि लागी सुन्न में, निसु दिन रहि गलतान ।
तन मन की कछु सुधि नहीं, पाया पद निरबान ॥१५॥
उनमुनि चढ़ी अकास को, गई धरनि से छूटि ।

हंसा चला घर आपने, काल रहा सिर कूटि ॥१६॥
उनमुनि से मन लागिया, गगनहिं पहुँचा जाय।
चाँद बिहूना चाँदना, अलख निरंजनराय ॥१७॥
मेरी मिटि मुक्ता भया, पाया अगम निवास।
अब मेरे दूजा नहीं, एक तुम्हारी आस ॥१८॥
सुरति समानी निरति में, अजपा माहीं जाप।
लेख समाना अलेख में, आपा माहीं आप ॥१९॥
सुरति समानी निरति में, निरति रही निरधार।
सुरति निरति परिचय भया, तब खुला सिंधु दुवार ॥२०॥
गुरू मिले सीतल भया, मिटी मोह तन ताप।
निसु बासर सुख-निधि लहौं, अन्तर प्रगटे आप ॥२१॥
कौतुक देखा देह बिनु, रबि ससि बिना उजास।
साहिब सेवा माहिं है, बेपरवाही दास ॥२२॥
पवन नहीं पानी नहीं, नहीं धरनि आकास।
तहाँ कबीरा संत जन, साहिब पास खवास ॥२३॥
अगवानी तो आइया, ज्ञान बिचार बिबेक।
पीछे गुरु भी आयँगे, सारे साज समेत ॥२४॥
पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे की सोभा नहीं, देखे ही परमान ॥२५॥
सुरज समाना चाँद में, दोऊ किया घर एक।
मन का चेता तब भया, पूर्ब जनम का लेख ॥२६॥
पंजर प्रेम प्रकासिया, अन्तर भया उजास।
सुख करि सूती महल में, बानी फूटी बास ॥२७॥
आया था संसार में, देखन को बहु रूप।
कहै कबीरा संत हो, परि गया नजरि अनूप ॥२८॥
पाया था सो गहि रहा, रसना लागी स्वाद।

रतन निराला पाइया, जगत टटोला बाद ॥२९॥
कबीर देखा एक अँग, महिमा कही न जाय।
तेज पुंज परसा धनी, नैनों रहा समाय ॥३०॥
नैंव बिहूना देहरा, देंह बिहूना देव।
तहाँ कबीर बिलंबिया, करै अलख की सेव ॥३१॥
कबीर कमल प्रकासिया, ऊगा निर्मल सूर।
रैन अँधेरी मिटि गई, बाजै अनहद तूर ॥३२॥
आकासे औंधा कुआँ, पाताले पनिहार।
जल हंसा कोइ पीवई, बिरला आदि बिचार ॥३३॥
गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गँभीर।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी, भींजै दास कबीर ॥३४॥
गगन मँडल के बीच में, जहाँ सोहंगम डोरि।
सबद अनाहद होत है, सुरति लगी तहँ मोरि ॥३५॥
दीपक जोया ज्ञान का, देखा अपरं देव।
चार बेद की गम नहीं, जहाँ कबीरा सेव ॥३६॥
कबीर जब हम गावते, तब जाना गुरु नाहिं।
अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाहिं ॥३७॥
मानसरोवर सुगम जल, हंसा केलि कराय।
मुकताहल मोती चुगै, अब उड़ि अंत न जाय ॥३८॥
सुन्न मँडल में घर किया, बाजै सबद रसाल।
रोम रोम दीपक भया, प्रगटे दीनदयाल ॥३९॥
पूरे से परिचय भया, दुख सुख मेला दूरि।
जम से बाकी कटि गई, साईं मिला हजूर ॥४०॥
सुरति उड़ानी गगन को, चरन बिलंबी जाय।
सुख पाया साहिब मिला, आनँद उर न समाय ॥४१॥
जा बन सिंह न संचरै, पंछी उड़ि नहिं जाय।

रैन दिवस की गम नहीं, (तहँ) रहा कबीर समाय ॥४२॥
कबीर तेज अनंत का, मानो सूरज सैन।
पति सँग जागी सुन्दरी, कौतुक देखा नैन ॥४३॥
अगम अगोचर गम नहीं, जहाँ झिलमिलै जोत।
तहाँ कबीरा बंदगी, पाप पुन्य नहिं छोत ॥४४॥
कबीर मन मधुकर भया, कीया नर तरु बास।
कँवल जो फूला नीर बिन, कोइ निरखै निज दास ॥४५॥
सीप नहीं सायर नहीं, स्वाँति बुंद भी नाहिं।
कबीर मोती नीपजे, सुन्न सिखर घट माहिं ॥४६॥
घट में औघट पाइया, औघट माहीं घाट।
कह कबीर परिचय भया, गुरु दिखाई बाट ॥४७॥
जहँ मोतियन की झालरी, हीरन का परकास।
चाँद सूर की गम नहीं, दरसन पावै दास ॥४८॥
कछु करनी कछु कर्म गति, कछु पूरबला लेख।
देखो भाग कबीर का, दोसत[1] किया अलेख ॥४९॥
पानी हीं तें हिम भया, हिम हीं गया बिलाय।
कबीर जो था सोइ भया, अब कछु कहा न जाय ॥५०॥
जा कारन मैं जाय था, सो तो मिलिया आय।
साईं ते सन्मुख भया, लगा कबीरा पाँय ॥५१॥
पंछी उड़ाना गगन को, पिंड रहा परदेस।
पानी पीया चोंच बिन, भूल गया यह देस ॥५२॥
सुचि[2] पाया सुख ऊपजा, दिल दरिया भरपूर।
सकल पाप सहजे गया, साहिब मिला हजूर ॥५३॥
तन भीतर मन मानिया, बाहर कतहुँ न लाग।
ज्वाला तें फिरि जल भया, बुझी जलन्ती आग ॥५४॥

(१) मित्र। (२) पवित्रता।

तत पाया तन बीसरा, मन धाया धरि ध्यान।
तपन मिटी सीतल भया, सुन्न किया अस्नान ॥५५॥
कबीर दिल दरिया मिला, फल पाया समरत्थ।
सायर माहिं ढँढोलता, हीरा चढ़ि गया हत्थ ॥५६॥
जा कारन मैं जाय था, सो तो पाया ठौर।
सोही फिर आपन भया, जा को कहता और ॥५७॥
कबीर देखा इक अगम, महिमा कही न जाय।
तेज पुंज परसा धनी, नैनों रहा समाय ॥५८॥
गरजै गगन अमी चुवै, कदली कमल प्रकास।
तहाँ कबीरा बन्दगी, करि कोई निज दास ॥५९॥
जा दिन किरतम ना हता, नहीं हाट नहिं बाट।
हता कबीरा संत जन, देखा औघट घाट ॥६०॥
नहीं हाट नहिं बाट था, नहिं धरती नहिं नीर।
असंख जुग परलय गया, तब की कहै कबीर ॥६१॥
पाँच तत्त गुन तीन के, आगे भक्ति मुकाम।
जहाँ कबीरा घर किया, तहँ दत्त[1] न गोरख राम ॥६२॥
सुर नर मुनि जन औलिया, यह सब उरली तीर।
अलह राम की गम नहीं, तहँ घर किया कबीर ॥६३॥
हम बासी उस देस के, जहाँ ब्रह्म का खेल।
दीपक देखा गैब का, बिन बाती बिन तेल ॥६४॥
हम बासी उस देस के, (जह) जाति बरन कुल नाहिं।
सबद मिलावा है रहा, देह मिलावा नाहिं ॥६५॥
जब दिल मिला दयाल से, तब कछु अंतर नाहिं।
पाला गलि पानी मिला, यों हरिजन हरि माहिं ॥६६॥
कबीर कमल प्रकासिया, ब्रह्म बास तहँ होय।

(१) दत्तात्रेय।

मन भँवरा जहँ लुबधिया, जानैगा जन कोय ॥६७॥
सून्न सरोवर मीन मन, नीर तीर सब देव ।
सुधा सिंधु सुख बिलसही, कोइ बिरला जाने भेव ॥६८॥
मैं लागा उस एक से, एक भया सब माहिं ।
सब मेरा मैं सबन का, तहाँ दूसरा नाहिं ॥६९॥
गुन इन्द्री सहजै गये, सतगुरु करी सहाय ।
घट में नाम प्रगट भया, बकि बकि मरै बलाय ॥७०॥

मौन का अंग

भारी कहूँ तो बहु डरूँ, हलुका कहूँ तो भीठ[1] ।
मैं क्या जानूँ पीव को, नैना कछू न दीठ ॥ १ ॥
दीठा है तो कस कहूँ, कहूँ तो को पतियाय ।
साईं जस तैसा रहो, हरखि हरखि गुन गाय ॥ २ ॥
ऐसो अद्भुत मत कथो, कथो तो धरो छिपाय ।
बेद कुराना ना लिखी, कहूँ तो को पतियाय ॥ ३ ॥
जो देखै सो कहै नहिं, कहै सो देखै नाहिं ।
सुनै सो समझावै नहीं, रसना दृग स्रवन काहि ॥ ४ ॥
जो पकरै सो चलै नहिं, चलै सो पकरै नाहिं ।
कह कबीर यह साखि को, अरथ समझ मन माहिं ॥ ५ ॥
गगन दुवारे मन गया, करै अमी रस पान ।
रूप सदा झलकत रहै, गगन मँडल गलतान ॥ ६ ॥
जानि बूझि जड़ होइ रहै, बल तजि निर्बल होय ।
कह कबीर वा दास को, गंजि सकै नहिं कोय ॥ ७ ॥
बाद बिबादे बिष घना, बोले बहुत उपाध ।
मौनि गहै सब को सहै, सुमिरै नाम अगाध ॥ ८ ॥

(१) झूठ ।

सजीवन का अंग

जरा मीच ब्यापै नहीं, मुआ न सुनिये कोय।
चलु कबीर वा देस को, जहँ बैद साइयाँ होय॥ १ ॥
भवसागर तें यों रहो, ज्यों जल कँवल निराल।
मनुवा व्हाँ लै राखिये, जहाँ नहीं जम काल॥ २ ॥
कबीर जोगी बन बसा, खनि खाया कँदमूल।
ना जानौं केहि जड़ी से, अमर भया अस्थूल॥ ३ ॥
कबीर तो पिउ पै चला, माया मोह से तोरि।
गगन मँडल आसन किया, काल रहा मुख मोरि॥ ४ ॥
कबीर मन तीखा किया, लाइ बिरह खरसान।
चित चरनों से चिपटिया, का करै काल का बान॥ ५ ॥

जीवत मृतक का अंग

जीवत मिरतक होइ रहै, तजै खलक की आस।
रच्छक समरथ सतगुरु, मत दुख पावै दास॥ १ ॥
कबीर काया समुंद है, अन्त न पावै कोय।
मिरतक होइ के जो रहै, मानिक लावै सोय॥ २ ॥
मैं मरजीवा[1] समुँद का, डुबकी मारी एक।
मूठी लाया ज्ञान की, जा में बस्तु अनेक॥ ३ ॥
डुबकी मारी समुँद में, निकसा जाय अकास।
गगन मँडल में घर किया, हीरा पाया दास॥ ४ ॥
हरि हीरा क्यों पाइहै, जिन जीवे की आस।
गुरु दरिया से काढ़सी, कोइ मरजीवा दास॥ ५ ॥
सुन्न सहर में पाइया, जहँ मरजीवा मन।
कबिरा चुनि चुनि ले गया, अन्तर नाम रतन॥ ६ ॥
मैं मरजीवा समुँद का, पैठा सप्त पताल।
लाज कानि कुल मेटि के, गहि ले निकसा लाल॥ ७ ॥

---

(१) समुद्र में डुबकी मार कर मोती निकालने वाला।

मोती निपजै सीप में, सीप समुंदर माहिं।
कोइ मरजीवा काढ़सी, जीवन की गम नाहिं ॥ ८ ॥
गुरु दरिया सूभर[1] भरा, जा में मुक्ता लाल।
मरजीवा ले नीकसै, पहिरि छिमा की खाल ॥ ९ ॥
खरी कसौटी नाम की, खोटा टिकै न कोय।
नाम कसौटी सो टिकै, जो जीवत मिरतक होय ॥१०॥
ऊँचा तरवर[2] गगन फल, बिरला पंछी खाय।
इस फल को तो सो चखै, जो जीवत ही मरि जाय ॥११॥
जब लग आस सरीर की, मिरतक हुआ न जाय।
काया माया मन तजै, चौड़े रहै बजाय ॥१२॥
कबीर मन मिरतक भया, दुरबल भया सरीर।
पाछे लागे हरि फिरैं, कहैं कबीर कबीर ॥१३॥
मन को मिरतक देखि के, मत मानै बिस्वास।
साध जहाँ लौं भय करैं, जब लग पिंजर स्वास ॥१४॥
मैं जानौं मन मरि गया, मरि के हूआ भूत।
मूए पीछे उठि लगा, ऐसा मेरा पूत ॥१५॥
मरते मरते जग मुआ, औसर मुआ न कोय।
दास कबीरा यों मुआ, बहुरि न मरना होय ॥१६॥
बैद मुआ रोगी मुआ, मुआ सकल संसार।
एक कबीरा ना मुआ, जा के नाम अधार ॥१७॥
जीवन से मरना भला, जो मरि जानै कोय।
मरने पहिले जो मरै, (तो) अजर रु अम्मर होय ॥१८॥
मन की मनसा मिटि गई, अहं गई सब छूट।
गगन मँडल में घर किया, काल रहा सिर कूट ॥१९॥
मोहिं मरने का चाव है, मरौं तो गुरु दुवार।
मत गुरु बूझै बात री, कोइ दास मुआ दरबार ॥२०॥

---

(१) प्रकाशमान। (२) पेड़।

जा मरने से जग डरै, मेरे मन आनंद।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानन्द ॥२१॥
भक्त मरे क्या रोइये, जो अपने घर जाय।
रोइये साकित बापुरे, जो हाटो होट बिकाय ॥२२॥
मरना भला बिदेस का, जहँ अपना नहिं कोय।
जीव जंत भोजन करैं, सहज महोच्छव होय ॥२३॥
कबीर मरि मरघट गया, किनहुँ न बूझी सार।
हरि आगे आदर लिया, ज्यों गऊ बछा की लार ॥२४॥
सूली ऊपर घर करै, बिष का करै अहार।
ता को काल कहा करै, जो आठ पहर हुसियार ॥२५॥
जिन पाँवन भुइँ बहु फिरा, देखा देस बिदेस।
तिन पाँवन थिति पकरिया, आँगन भया बिदेस ॥२६॥
पाँच पचीसो मारिया, पापी कहिये सोय।
यहि परमारथ बूझि के, पाप करो सब कोय ॥२७॥
आपा मेटे गुरु मिलै, गुरु मेटे सब जाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कहे न कोइ पतियाय ॥२८॥
घर जारे घर ऊबरै, घर राखे घर जाय।
एक अचंभा देखिया, मुआ काल को खाय ॥२९॥
कबीर चेरा संत का, दासनहू का दास।
अब तो ऐसा होइ रहु, ज्यों पाँव तले की घास ॥३०॥
रोड़ा होइ रहु बाट का, तजि आपा अभिमान।
लोभ मोह तृस्ना तजै, ताहि मिलै निज नाम ॥३१॥
रोड़ा भया तो क्या भया, पंथी को दुख देय।
साधू ऐसा चाहिए, ज्यों पैंड़े की खेह ॥३२॥
खेह भई तो क्या भया, उड़ि उड़ि लागै अंग।
साधू ऐसा चाहिये, जैसे नीर निपंग ॥३३॥

नीर भया तो क्या भया, ताता सीरा जोय।
साधू ऐसा चाहिये, जो हरि ही जैसा होय ॥३४॥
हरि भया तो क्या भया, जो करता हरता होय।
साधू ऐसा चाहिये, जो हरि भज निरमल होय ॥३५॥
निरमल भया तो क्या भया, निरमल माँगै ठौर।
मल निरमल तें रहित है, ते साधू कोइ और ॥३६॥

साध का अंग

साध बड़े परमारथी, घन ज्यों बरसैं आय।
तपन बुझावैं और की, अपनो पारस लाय ॥ १ ॥
सद कृपाल दुख परिहरन, बैर भाव नहिं दोय।
छिमा ज्ञान सत भाखही, हिंसा रहित जो होय ॥ २ ॥
दुख सुख एक समान है, हरष सोक नहि व्याप।
उपकारी निःकामता, उपजै छोह न ताप ॥ ३ ॥
सदा रहै संतोष में, धरम आप दृढ़ धार।
आस एक गुरुदेव की, और न चित्त विचार ॥ ४ ॥
सावधान औ सीलता, सदा प्रफुल्लित गात।
निरबिकार गम्भीर मति, धीरज दया बसात ॥ ५ ॥
निरबैरी निःकामता स्वामी सेती नेह।
बिषया से न्यारा रहै, साधन का मति येह ॥ ६ ॥
मान अपमान न चित धरै, औरन को सनमान।
जो कोई आसा करै, उपदेसै तेहि ज्ञान ॥ ७ ॥
सीलवंत दृढ़ ज्ञान मति, अति उदार चित होय।
लज्यावान अति निछलता, कोमल हिरदा सोय ॥ ८ ॥
दयावंत धरमक ध्वजा, धीरजवान प्रमान।
संतोषी सुखदायक रु, सेवक परम सुजान ॥ ९ ॥
ज्ञानी अभिमानी नहीं, सब काहू से हेत।

सत्यवान परस्वारथी, आदर भाव सहेत ॥१०॥
निस्चय भल अरु दृढ़ मता, ये सब लच्छन जान।
साध सोई है जगत में, जो यह लच्छनवान ॥११॥
ऐसा साधू खोजि कै, रहिये चरनों लाग।
मिटै जनम की कल्पना, जा के पूरन भाग ॥१२॥
सिंहों के लेहँड़े नहीं, हंसों की नहिं पाँत।
लालों की नहिं बोरियाँ, साध न चलैं जमात[1] ॥१३॥
सब बन तो चन्दन नहीं, सूरा का दल नाहिं।
सब समुद्र मोती नहीं, यों साधू जग माहिं ॥१४॥
स्वाँगी सब संसार है, साधु समझ अपार।
अललपच्छ कोइ एक है, पंछी कोटि हजार ॥१५॥
सिंह साध का एक मति, जीवत ही को खाय।
भाव-हीन मिरतक दसा, ता के निकट न जाय ॥१६॥
रबि को तेज घटै नहीं, जो घन जुड़ै घमंड।
साध बचन पलटै नहीं, (जो) पलटि जाय ब्रह्मंड ॥१७॥
साध कहावन कठिन है, ज्यों खाँड़े की धार।
डिगमिगाय तो गिरि पड़ै, निःचल उतरै पार ॥१८॥
साध कहावन कठिन है, ज्यों लम्बो पेड़ खजूर।
चढ़ै तो चाखै प्रेम रस, गिरै तो चकनाचूर ॥१९॥
जौन चाल संसार की, तौन साध की नाहिं।
डिंभ चाल करनी करै, साध कहो मत ताहि ॥२०॥
गाँठी दाम न बाँधई, नहिं नारी से नेह।
कह कबीर ता साध की, हम चरनन की खेह ॥२१॥
आवत साध न हरषिया, जात न दीया रोय।
कह कबीर वा दास की, मुक्ति कहाँ से होय ॥२२॥

---

(१) गिरोह, भीड़-भाड़।

छाजन भोजन प्रीति से, दीजै साथ बुलाय।
जीवत जस है जक्त में, अंत परम पद पाय ॥२३॥
साध हमारी आत्मा, हम साधन के जीव।
साधन मद्धे यों रहों, ज्यों पय मद्धे घीव ॥२४॥
ज्यों पय मद्धे घीव है, त्यों रमिया सब ठौर।
बक्ता स्रोता बहु मिले, मथि काढ़ैं ते और ॥२५॥
साध नदी जल प्रेम रस, तहाँ प्छालौ[1] अंग।
कह कबीर निरमल भया, साधू जन के संग ॥२६॥
बृच्छ कबहुँ नहिं फल भखै, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने, साधन धरा सरीर ॥२७॥
साधू आवत देखि कर हँसी हमारी देंह।
माथे का ग्रह ऊतरा, नैनों बँधा सनेह ॥२८॥
साधु साधु सबही बड़े, अपनी अपनी ठौर।
सबद बिबेकी पारखी, ते माथे के मौर ॥२९॥
साधु साधु सब एक हैं, जस पोस्ता का खेत।
कोई बिबेकी लाल है, कोई सेत का सेत ॥३०॥
निराकार की आरसी, साधोंहीं की देंहि।
लखा जो चाहे अलख को, (तो) इनहीं में लखि लेहि ॥३१॥
कोई आवै भाव लै, कोइ अभाव लै आव।
साध दोऊ को पोषते, भाव न गिनैं अभाव ॥३२॥
कबीर दरसन साध का, करत न कीजे कानि।
(ज्यों) उद्यम से लछमी मिलै, आलस में नित हानि ॥३३॥
कबीर दरसन साध का, साहिब आवैं याद।
लेखे में सोई घड़ी, बाकी के दिन बाद ॥३४॥
खाली साध न भेंटिये, सुन लीजे सब कोय।

(१) धोओ।

कहैं कबीरा भेंट धरु, जो तेरे घर होय ॥३५॥
मन मेरा पंछी भया, उड़ि कर चढ़ा अकास।
गगन मँडल खाली पड़ा, साहिब संतों पास ॥३६॥
नहिं सीतल है चन्द्रमा, हिम नहिं सीतल होय।
कबीर सीतल संत जन, नाम सनेही सोय ॥३७॥
रक्त छाड़ि पय को गहै, ज्यों रे गऊ का बच्छ।
औगुन छाड़ै गुन गहै, ऐसा साधू लच्छ ॥३८॥
साधू आवत देखि कै, मन में करै मरोर।
सो तो होसी चूहरा[1], बसै गाँव की छोर ॥३९॥
साधन के मैं संग हौं, अनत कहूँ नहिं जावँ।
जो मोहिं अरपै प्रीति से, साधन मुख है खावँ ॥४०॥
साध मिले साहिब मिले, अंतर रही न रेख।
मनसा बाचा कर्मना, साधू साहिब एक ॥४१॥
सुख देवैं दुख को हरैं, दूर करैं अपराध।
कह कबीर वे कब मिलैं, परम सनेही साध ॥४२॥
जानि न पूछो साध की, पूछि लीजिये ज्ञान।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥४३॥
साध मिलैं यह सब टलैं, काल जाल जम चोट।
सीस नवावत ढहि पड़ै, अघ पापन की पोट ॥४४॥
साध चलत रो दीजिये, कीजे अति सनमान।
कहै कबीरा भेंट धरु, अपने बित अनुमान ॥४५॥
दरसन कीजै साध का, दिन में कइ इक बार।
आसोजा[2] का मेंह ज्यों, बहुत करै उपकार ॥४६॥
कई बार नहिं करि सकै, तो दोय बखत करि लेय।
कबीर साधू दरस तें, काल दगा नहिं देय ॥४७॥

(१) भंगी। (२) क्वार।

दोय बखत नहिं करि सकै, तो दिन में करु इक बार।
कबीर साधू दरस तें, उतरै भौजल पार ॥४८॥
एक दिना नहिं करि सकै, तो दूजे दिन करि लेहि।
कबीर साधू दरस तें, पावै उत्तम देहि ॥४९॥
दूजे दिन नहिं करि सकै, तीजे दिन करि जाय।
कबीर साधू दरस तें, मोच्छ मुक्ति फल पाय ॥५०॥
तीजे चौथे नहिं करै, तो बार बार[1] करि जाय।
या में बिलँब न कीजिये, कह कबीर समुझाय ॥५१॥
बार बार नहिं करि सकै, तो पाख पाख[2] करि लेय।
कह कबीर सो भक्त जन, जनम सुफल करि लेय ॥५२॥
पाख पाख नहिं करि सकै, तो मास मास करि जाय।
या में देर न लाइये, कह कबीर समुझाय ॥५३॥
मास मास नहिं करि सकै, तो छठे मास अलबत्त।
या में ढील न कीजिये, कह कबीर अविगत्त ॥५४॥
छठे मास नहिं करि सकै, बरस दिना करि लेय।
कह कबीर सो भक्त जन, जमहिं चुनौती देय[3] ॥५५॥
बरस बरस नहिं करि सकै, ता को लागै दोष।
कहै कबीर जीव सो, कबहुँ न पावै मोष ॥५६॥
संत न छोड़ै संतई, कोटिक मिलैं असंत।
मलय भुवंगम बेधिया, सीतलता न तजंत ॥५७॥
साधू जन सब में रमैं, दुक्ख न काहू देहिं।
अपने मति गाढ़े रहैं, साधुन का मति येहि ॥५८॥
साधू ऐसा चाहिये, दुखै दुखावै नाहिं।
पान फूल छेड़ै नहीं, बसै बगीचा माहिं ॥५९॥
साधू भँवरा जग कली, निसि दिन रहै उदास।

(१) सातवें दिन, हफ्तेवार। (२) पंद्रहवें दिन। (३) जम को धिरावै।

पल इक तहाँ बिलम्बही, सीतल सबद निवास ॥६०॥
साध हजारी कापड़ा, ता में मल न समाय।
साकट काली कामरी, भावै तहाँ बिछाय ॥६१॥
साकट बाम्हन मत मिलौ, साध मिलौ चंडाल।
जाहि मिले सुख ऊपजे, मानो मिले दयाल ॥६२॥
कमल पत्र हैं साधु जन, बसैं जगत के माहिं।
बालक केरी धाय ज्यों, अपना जानत नाहिं ॥६३॥[1]
साध सिद्ध बड़ अंतरा, जैसे आम बबूल।
वा की डारी अमी फल, या की डारी सूल ॥६४॥
साधू सोई जानिये, चलै साधु की चाल।
परमारथ राता रहै, बोलै बचन रसाल ॥६५॥
हरि दरिया सूभर भरा, साधों का घट सीप।
ता में मोती नीपजे, चढ़ै देसावर दीप ॥६६॥
साधू ऐसा चाहिये, जा के ज्ञान बिवेक।
बाहर मिलते से मिलै, अंतर सब से एक ॥६७॥
अगम पंथ को मन गया, सुरत भई अगुवान।
तहाँ कबीरा मँड़ि रहा, बेहद के मैदान ॥६८॥
बहता पानी निर्मला, बँधा गँधीला होय।
साधू जन रमते भले, दाग न लागै कोय ॥६९॥
बँधा भी पानी निर्मला, जो टुक गहिरा होय।
साधू जन बैठा भला, जो कछु साधन सोय ॥७०॥
कौन साधु का खेल है, कौन सुरत का दाव।
कौन अमी का कूप है, कौन बज्र का घाव ॥७१॥
छिमा साधु का खेल है, सुमति सुरत का दाव।

(१) जैसे कंवल का पत्ता पानी के बढ़ने पर भी उसमें डूब नहीं जाता और जैसे धाय दूसरे के बच्चे को दूध पिलाती है तो उसके साथ पुत्र के समान ममता नहीं हो जाती ऐसे ही साध जन का जगत से व्यवहार रहता है।

सतगुरु अमृत कूप हैं, सबद बज्र का घाव ॥७२॥
साध् भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं।
धन का भूखा जो फिरै, सो तो साध् नाहिं ॥७३॥
कबीर सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाय।
अंक भरे भरि भेटिये, पाप सरीरा जाय ॥७४॥
भली भई जो भय मिटा, टूटी कुल की लाज।
बेपरवाही ह्वै रहा, बैठा नाम जहाज ॥७५॥
साधु समुन्दर जानिये, माहीं रतन भराय।
मंद भाग मूठी भरै, कर कंकर चढ़ि जाय ॥७६॥
परमेसुर तें संत बड़, ता का कहा उनमान।
हरि माया आगे धरे, संत रहैं निर्बान ॥७७॥
संत मिला जनि बीछरो, बिछरौ यह मम प्रान।
नाम-सनेही ना मिलै, तो प्रान देहि मत आन ॥७८॥
कबीर कुल सोई भला, जा कुल उपजै दास।
जेहि कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक पलास ॥७९॥
चंदन की कुटकी[1] भली, नहिं बबूल लखराँव।
साधन की झुपड़ी भली, ना साकट को गाँव ॥८०॥
हैबर गैबर[2] सुघर घर, छत्रपती की नारि।
तासु पटतरे ना तुलै, हरिजन की पनिहारि ॥८१॥
साधन की कुतिया भली, बुरी सकट की माय।
वह बैठी हरि जस सुनै, वह निन्दा करने जाय ॥८२॥
हरि दरबारी साध हैं, इन सम और न होय।
बेगि मिलावैं नाम से, इन्हैं मिलै जो कोय ॥८३॥
साधन केरी दया से, उपजै बहुत अनंद।
कोटि बिघन पल में टरै, मिटै सकल दुख द्वन्द ॥८४॥

---

(१) टुकड़ा। (२) अनगिनत घोड़े हाथी।

धन्य सो माता सुन्दरी, जिन जाया साधू पूत ।
नाम सुमिरि निर्भय भया, अरु सब भया अबूत[१] ॥८५॥
बेद थके ब्रह्मा थके, थाके सेस महेस ।
गीताहू को गम नहीं, तहँ संत किया परबेस ॥८६॥
तीरथ जाये एक फल, साध मिले फल चारि[२] ।
सतगुरु मिले अनेक फल, कहै कबीर बिचारि ॥८७॥
साधु सीप साहिब समुँद, निपजत[३] मोती माहिं[४] ।
बस्तु ठिकाने पाइये, नाल खाल[५] में नाहिं ॥८८॥
साध खोजा[६] राम के, धँसैं जो महलन माहिं ।
औरन को परदा लगै, इन को परदा नाहिं ॥८९॥
हरि सेती हरिजन बड़े, समझि देखु मन माहिं ।
कह कबीर जग हरि बिखे[७], सो हरि हरिजन माहिं ॥९०॥
साध बड़े संसार में, हरि तें अधिका सोय ।
बिन इच्छा पूरन करैं, साहिब हरि नहिं दोय ॥९१॥
साधू आवत देखि के, चरनन लागूँ धाय ।
ना जानूँ यहि भेष में, हरि ही जो मिलि जाय ॥९२॥
कबीर दरसन साधु के, बड़ भागे दरसाय ।
जो होवै सूली सजा[८], काँटेई टरि जाय ॥९३॥
साध बृच्छ सत नाम फल, सीतल सबद बिचार ।
जग में होते साध नहिं, जरि मरता संसार ॥९४॥
साध सेव जा घर नहीं, सतगुरु पूजा नाहिं ।
सो घर मरघट सारिखा[९], भूत बसै ता माहिं ॥९५॥
निराकार निज रूप है, प्रेम प्रीति से सेव ।
जो चाहै आकार तूँ, साधू परतछ देव ॥९६॥

(१) वृथा । (२) अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष । (३) पैदा होता है । (४) अंतर में । (५) नाला और डबरा । (६) हिजड़े जो बादशाही महल में काम करते थे और बड़ी कदर से रक्खे जाते थे । (७) में । (८) दंड । (९) सरीखा, समान ।

जा सुख को मुनिवर रटैं, सुर नर करैं बिलाप।
सो सुख सहजै पाइये, संतन सेवत आप ॥६७॥
कोटि कोटि तीरथ करै, कोटि कोटि करि धाम।
जब लगि संत न सेवई, तब लगि सरै न काम ॥६८॥
आसा बासा संत का, ब्रह्मा लखै न बेद।
षट दर्सन[1] खटपट करै, बिरला पावै भेद ॥६९॥

भेष का अंग

तत्व तिलक तिहुँ लोक में सत्त नाम निज सार।
जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अमित अपार ॥ १ ॥
तत्व तिलक की खानि है महिमा है निज नाम।
अछै नाम वा तिलक को, रहै अछय बिस्राम ॥ २ ॥
तत्व तिलक माथे दिया, सुरति सरवनी कान।
करनी कंठी कंठ में परसा पद निर्बान ॥ ३ ॥
मन माला तन मेखला, भय की करै भभूत।
अलख मिला सब देखता, सो जोगी अवधूत ॥ ४ ॥
तन को जोगी सब करै, मन को बिरला कोय।
सहजै सब सिधि पाइये, जो मन जोगी होय ॥ ५ ॥
हम तो जोगी मनहिं के, तन के हैं ते और।
मन को जोग लगावते, दसा भई कछु और ॥ ६ ॥
भर्म न भागा जीव का, बहुतक धरिया भेख।
सतगुरु मिलिया बाहिरे, अंतर रहि गइ रेख ॥ ७ ॥

बेहद का अंग

बेहद अगाधी पीव है, ये सब हद के जीव।
जे नर राते हद्द से, कधी न पावैं पीव ॥ १ ॥
हद में पीव न पाइये, बेहद में भरपूर।
हद बेहद की गम लखै, ता से पीव हजूर ॥ २ ॥

---

(१) छवो शास्त्र।

हद्द बँधा बेहद रमै, पल पल देखै नूर।
मनुवाँ तहँ लै राखिया, (जहँ) बाजे अनहद तूर ॥ ३ ॥
हद्द छाड़ि बेहद गया, सुन्न किया अस्थान।
मुनि जन जान न पावहीं, तहाँ लिया बिसराम ॥ ४ ॥
हद्द छाड़ि बेहद गया, रहा निरन्तर होय।
बेहद के मैदान में, रहा कबीरा सोय ॥ ५ ॥
हद में बैठा कथत है, बेहद की गम नाहिं।
बेहद की गम होयगी, तब कछु कथना काहिं ॥ ६ ॥
हद में रहै सो मानवी, बेहद रहै सो साध।
हद बेहद दोऊ तजै, तिन का मता अगाध ॥ ७ ॥
हद बेहद दोऊ तजी, अबरन किया मिलान।
कह कबीर ता दास पर, वारौं सकल जहान ॥ ८ ॥
जहाँ सोक ब्यापै नहीं, चल हंसा वा देस।
कह कबीर गुरुगम गहो, छाड़ि सकल भ्रम भेस ॥ ९ ॥

असाधु का अंग

कबीर भेष अतीत का, करै अधिक अपराध।
बाहर देखे साध गति, माहीं बड़ा असाध ॥ १ ॥
जेता मीठा बोलवा, तेता साधु न जान।
पहिले थाह दिखाइ करि, औंड़े[1] देसी आन ॥ २ ॥
उज्जल देखि न धीजिये, बग ज्यों माँड़े ध्यान।
धूरे[2] बैठि चपेटही, यों लै बूड़ै ज्ञान ॥ ३ ॥
चाल बकुल की चलत है, बहुरि कहावै हंस।
ते मुक्ता कैसे चुगे, परे काल के फंस ॥ ४ ॥
साधू भया तो क्या हुआ, माला पहिरी चार।
बाहर भेष बनाइया, भीतर भरी भँगार ॥ ५ ॥

(१) गहिरे। (२) एक तरह की मोटी घास।

माला तिलक लगाइ के, भक्ति न आई हाथ।
दाढ़ी मूँछ मुड़ाइ के, चले दुनी[1] के साथ ॥ ६ ॥
दाढ़ी मूँछ मुड़ाइ के, हूआ घोटम घोट।
मन को क्यों नहिं मूड़िये, जा में भरिया खोट ॥ ७ ॥
मूँड़ मुड़ाये हरि मिलैं, सब कोइ लेहि मुँड़ाय।
बार बार के मूँड़ने, भेड़ बैकुंठ न जाय ॥ ८ ॥
केसन[2] कहा बिगारिया, जो मूँड़ौ सौ बार।
मन को क्यों नहिं मूड़िये, जा में बिषय बिकार ॥ ९ ॥
मन मेवासी मूँड़िये, केसहिं मूँड़े काहिं।
जो कछु किया सो मन किया, केस किया कछु नाहिं ॥१०॥
देखा देखी भक्ति का, कबहुँ न चढ़सी रंग।
बिपति पड़े पर छाड़सी, ज्यों केंचुरी भुजंग ॥११॥
ज्ञान सँपूरन ना बिधा, हिरदा नाहिं छिदाय।
देखा देखी पकरिया, रंग नहीं ठहराय ॥१२॥
बाँबी कूटैं बावरे, साँप न मारा जाय।
मूरख बाँबी ना डसै, सर्प सबन को खाय ॥१३॥
आप साधु करि देखिये, देखु असाधु न कोय।
जा के हिरदे गुरु नहीं, हानि उसी की होय ॥१४॥
खलक मिला खाली रहा, बहुत किया बकवाद।
बाँझ झुकावै पालना, ता में कौन सवाद ॥१५॥
जो बिभूति साधुन तजी, तेहि बिभूति लपटाय।
जौन बवन करि डारिया, स्वान स्वादि करि खाय[3] ॥१६॥
स्वाँग पहिरि सोहदा भया, दुनिया खाई खूँदि।
जा सेरी[4] साधू गया, सो तो राखी मूँदि ॥१७॥

---

(१) दुनियाँ। (२) बाल। (३) जिस माया को सच्चे साधु ने त्याग किया उसमें असाधु लपटता है जैसे कुत्ता के की हुई चीज को मजे के साथ खाता है। (४) रास्ता।

भूला भसम रमाइ के, मिटी न मन की चाहि ।
जौ सिक्का नहिं साच का, तौ लगि जोगी नाहिं ॥१८॥
बाना पहिरे सिंह का, चलै भेड़ की चाल ।
बोली बोलै स्यार की, कुत्ता खाया फाल[1] ॥१९॥
कबीर वह तो एक है, परदा दीया भेख ।
करम भरम सब दूरि करि, सबही माहिं अलेख ॥२०॥
पहिले बूड़ी पिरथवी, झूठे कुल की लार ।
अलख बिसार्‌यो भेष में, बूड़े काली धार ॥२१॥
चतुराई हरि ना मिलै, ये बातों की बात ।
निस्प्रेही निरधार[2] का, गाहक दीनानाथ ॥२२॥
जप माला छापा तिलक, सरै न एको काम ।
मन काचे राचे वृथा साचे राचे नाम ॥२३॥
साकट का मुख बिम्ब[3] है, निकसत बचन भुवंग ।
ता की औषधि मौन है, बिष नहिं व्यापै अंग ॥२४॥
साकट कहा न कहि चलै, स्वान कहा नहिं खाय ।
जो कौआ मठ हगि भरै, तो मठ को कहा नसाय ॥२५॥
साकट संग न बैठिये, अपनो अंग लगाय ।
तत्व सरीरा झरि परै, पाप रहै लपटाय ॥२६॥
हम जाना तुम मगन हौ, रहे प्रेम रस पागि ।
रंचक पवन के लागते उठे नाग से जागि ॥२७॥
बात बनाई जग ठगा, मन परमोधा नाहिं ।
कबीर स्वारथ ले गया, लख चौरासी माहिं ॥२८॥
सोवत साधु जगाइये, करै नाम का जाप ।
ये तीनों सोवत भले, साकट सिंह रु साँप ॥२९॥
आँखों देखा घी भला, मुख मेला नहिं तेल ।

(१) फाड़ । (२) संसार की ओर से बेपरवाह और निरास । (३) बाँबी ।

साधू से झगड़ा भला, ना साकट से मेल ॥३०॥
घर में साकट इस्तरी, आप कहावै दास।
वो तो ह्वैगी सूकरी, वह रखवाला पास ॥३१॥
साकट नारी छाड़िये, गनिका कीजै नारि।
दासी है हरिजनन की, कुल नहिं आवै गारि ॥३२॥

गृहस्थ की रहनी का अंग

जो मानुष गृहधर्म युत, राखै सील बिचार।
गुरुमुख बानी साधु सँग, मन बच सेवा सार ॥ १ ॥
सेवक भाव सदा रहे, बहम[1] न आनै चित्त।
निरनै लखै जथार्थ बिधि, साधुन को करै मित्त ॥ २ ॥
सत्त सील दाया सहित, बरतै जग ब्यौहार।
गुरु साधू का आस्रित, दीन बचन उच्चार ॥ ३ ॥
बहु संग्रह बिषयान को, चित्त न आवै ताहि।
मधुकर इव[2] सब जगत जिव, घटि बढ़ि लखि बरताहि ॥ ४ ॥
गिरही सेवै साधु को, साधू सुमिरै नाम।
या में धोखा कछु नहीं, सरै दोऊ को काम ॥ ५ ॥

बैरागी की रहनी का अंग

सिख[3] साखा संसार गति, सेवक परतछ काल।
बैरागी छावै मढ़ी, ता को मूल न डाल ॥ १ ॥
पास न जाके कापड़ा, कधी सुरग न होय।
कबीर त्यागै ज्ञान करि, कनक कामिनी दोय ॥ २ ॥
घर में रहु तौ भक्ति करु, नातर करु बैराग।
बैरागी बंधन करै, ता का बड़ा अभाग ॥ ३ ॥
धारन तो दोऊ भली, गिरही कै बैराग।
गिरही दासातन करै, बैरागी अनुराग ॥ ४ ॥

---

(१) भ्रम। (२) सदृश। (३) शिष्य।

बैरागी बिरकत भला, ग्रेही चित्त उदार ।
दोउ बातों खाली पड़ै, ता को वार न पार ॥ ५ ॥

अष्ट दोष वा बिकारी अंग

१—काम का अंग

कामी का गुरु कामिनी, लोभी का गुरु दाम ।
कबीर का गुरु संत है, सन्तन का गुरु नाम ॥ १ ॥
सहकारी दीपक दसा, सोखै तेल निवास ।
कबीर हीरा संत जन, सहजै सदा प्रकास ॥ २ ॥
कामी कुत्ता तीस दिन, अंतर होय उदास ।
कामी नर कुत्ता सदा, छः ऋतु बारह मास ॥ ३ ॥
कामी क्रोधी लालची, इन से भक्ति न होय ।
भक्ति करै कोइ सूरमा, जाति बरन कुल खोय ॥ ४ ॥
भक्ति बिगारी कामियाँ, इन्द्री केरे स्वाद ।
हीरा खोया हाथ से, जन्म गँवाया बाद ॥ ५ ॥
कामी लज्जा ना करै मन माहीं अहलाद ।
नींद न माँगै साथरा[1], भूख न माँगै स्वाद ॥ ६ ॥
कामी कबहुँ न गुरु भजे, मिटै न संसय सूल ।
और गुनन सब बकिसहौं, कामी डार न मूल ॥ ७ ॥
काम क्रोध सूतक सदा, सूतक लोभ समाय ।
सील सरोवर न्हाइये, तब यह सूतक जाय ॥ ८ ॥
जहाँ काम तहँ नाम नहिं, जहाँ नाम नहिं काम ।
दोनों कबहूँ ना मिलैं, रवि रजनी इक ठाम ॥ ९ ॥
नारि पुरुष सबही सुनो, यह सतगुरु की साखि ।
बिष फल फले अनेक हैं, मत कोइ देखो चाखि ॥ १० ॥
जिन खाया सोई मुआ, गन गँधर्व बड़ भूप ।

(१) बिछौना ।

सतगुरु कहैं कबीर से, जग में जुगति अनूप ॥११॥
कामी तो निर्भय भया, करै न काहू संक।
इंद्री केरे बस परा, भुगतै नरक निसंक ॥१२॥
कबीर कामी पुरुष का, संसय कबहुँ न जाय।
साहिब से अलगा रहै, वा के हिरदे लाय[1] ॥१३॥
कामी अमी न भावई, बिष को लेवै सोधि।
कुबुधि न भाजे जीव की, भावै ज्यों परमोधि ॥१४॥
कहता हूँ कहि जात हूँ, समझै नहीं गँवार।
बैरागी गिरही कहा, कामी वार न पार ॥१५॥
कामी कर्म की केंचली, पहिरि हुआ नर नाग।
सिर फोरै सूझै नहीं, कोइ पूरबला भाग ॥१६॥
काम कहर असवार है, सब को मारै धाय।
कोइक हरिजन ऊबरा, जा के नाम सहाय ॥१७॥
केता बहता बहि गया, केता बहि बहि जाय।
ऐसा भेद बिचारि कै, तू मति गोता खाय ॥१८॥
काम क्रोध मद लोभ की, जब लगि घट में खान।
कहा मूरख कहा पंडिता, दोनों एक समान ॥१९॥
काम काम सब कोइ कहै, काम न चीन्है कोय।
जेती मन की कल्पना, काम कहावै सोय ॥२०॥

२—क्रोध का अंग

यह जग कोठी काठ की, चहुँ दिसि लागी आग।
भीतर रहे सो जरि मुए, साधू उबरे भाग ॥ १ ॥
क्रोध अगिन घर घर बढ़ी, जरै सकल संसार।
दीत लीन निज भक्त जो, तिन के निकट उबार ॥ २ ॥
कोटि करम लागे रहैं, एक क्रोध की लार।
किया कराया सब गया, जब आया हंकार ॥ ३ ॥

(१) आग।

जक्त माहिं धोखा घना, अहं क्रोध औ काल ।
पार पहूँचा मारिये, ऐसा जम का जाल ॥ ४ ॥

दसो दिसा से क्रोध की, उठी अपरबल आगि ।
सीतल संगति साध की, तहाँ उबरिये भागि ॥ ५ ॥

गारि अँगारा क्रोध झल, निंदा धूआँ होय ।
इन तीनों को परिहरै, साध कहावै सोय ॥ ६ ॥

कुबुधि कमानी चढ़ि रही, कुटिल बचन का तीर ।
भरि भरि मारै कान में, सालै सकल सरीर ॥ ७ ॥

कुटिल बचन सब से बुरा, जारि करै तन छार ।
साध बचन जल रूप है, बरसै अमृत धार ॥ ८ ॥

निन्दक तें कूकर भला, हठ करि माड़ै रारि[1] ।
कूकर तें क्रोधी बुरा, गुरुहिं दिवावै गारि[2] ॥ ९ ॥

३ लोभ का अंग

जब मन लागा लोभ से, गया बिषय में सोय ।
कहै कबीर बिचारि कै, कस भक्ती धन होय ॥ १ ॥

कबीर त्रिस्ना पापिनी, ता से प्रीति न जोरि ।
पैंड पैंड पाछे परै, लागै मोटी खोरि ॥ २ ॥

त्रिस्ना सींची ना बुझै, दिन दिन बढ़ती जाय ।
जवासा का रूख ज्यों, घन मेहा कुम्हिलाय ॥ ३ ॥

कबीर औंधी खोपरी, कबहूँ धापै नाहिं ।
तीन लोक की संपदा, कब आवै घर माहिं ॥ ४ ॥

आब गई आदर गया, नैनन गया सनेह ।
ये तीनों जबही गये, जबहिं कहा कछु देह ॥ ५ ॥

सूम थैली अरु स्वान भग, दोनों एक समान ।
घालत में सुख ऊपजे, काढ़त निकसै प्रान ॥ ६ ॥

---

(१) झगड़ा। (२) गाली।

जग में भक्त कहावई, चुकट[1] चून नहिं देय।
सिष जोरू का ह्वै रहा, नाम गुरू का लेय ॥ ७ ॥
बहुत जतन करि कीजिये, सब फल जाय नसाय।
कबीर संचय सूम धन, अंत चोर लै जाय ॥ ८ ॥
पूत पियारे पिता के, सँग रे लागा धाय।
लोभ मिठाई हाथ लै, आपन गया भुलाय ॥ ९ ॥

४—मोह का अंग

मोह फंद सब फंदिया, कोइ न सकै निरवार।
कोइ साधू जन पारखी, बिरला तत्त्व बिचार ॥ १ ॥
प्रथम फँदे सब देवता, (सुख) बिलसैं स्वर्ग निवास।
मोह मगन सुख पाइया, मृत्युलोक की आस ॥ २ ॥
दूजे ऋषि मुनिवर फँदे, ता से रुचि उपजाय।
स्वर्गलोक सुख मानहीं, (फिरि) धरनी परत हैं आय ॥ ३ ॥
मोह मगन संसार है, कन्या रही कुमारि।
काहू सुरति जो ना करी, फिरि फिरि ले अवतार ॥ ४ ॥
कुरुच्छेत्र सब मेदनी, खेती करै किसान।
मोह मिरग सब चरि गया, आस न रहि खलिहान ॥ ५ ॥
काहू जुगति न जानिया, केहि बिधि बचै सु खेत।
नहिं बँदगी नहिं दीनता, नहिं साधू सँग हेत ॥ ६ ॥
जब घट मोह समाइया, सबै भया अँधियार।
निर्मोह ज्ञान बिचारि कै, कोइ साधू उतरै पार ॥ ७ ॥
जहँ लगि सब संसार है, मिरग सबन को मोह।
सुर नर नाग पताल अरु, ऋषि मुनिवर सब जोह ॥ ८ ॥
अष्ट सिद्धि नौ निद्धि लौं, तुम से रहै निनार[2]।
मिरगहिं बाँधि बिडारहू, कहै कबीर बिचार ॥ ९ ॥

(१) चुटकी भर भी। (२) न्यारा।

सलिल मोह की धार में, बहि गये गहिर गँभीर ।
सुच्छम मछरी सुरत है, चढ़िहै उलटे नीर ॥१०॥

५—मान और हँगता का अंग

कंचन तजना सहज है, सहज त्रिया का नेह ।
मान बड़ाई ईरषा, दुरलभ तजनी येह ॥ १ ॥
माया तजी तो क्या भया, मान तजा नहिं जाय ।
मान बड़े मुनिवर गले, मान सबन को खाय ॥ २ ॥
काला मुँह कर मान का, आदर लावौ आगि ।
मान बड़ाई छाड़ि के, रहौ नाम लौ लागि ॥ ३ ॥
मान बड़ाई कूकरी, धरमराय दरबार ।
दीन लकुटिया बाहरा, सब जग खाया फाड़ ॥ ४ ॥
मान बड़ाई कूकरी, सन्तन खेदी जानि ।
पांडव जग पूरन भया, सुपच बिराजे आनि ॥ ५ ॥
मान बड़ाई जगत में, कूकर की पहिचान ।
मीत किये मुख चाटही, बैर किये तन हानि ॥ ६ ॥
मान बड़ाई ऊरमी, यह जग का ब्योहार ।
दीन गरीबी बंदगी, सतगुरु का उपकार ॥ ७ ॥
बड़ी बड़ाई ऊँट की, लादे जहँ लगि साँस ।
मुहकम सलिता[1] लादि के, ऊपर चढ़ै फरास ॥ ८ ॥
हरिजन को ऊँचा नवै[2], ऊँट जनम का होय ।
तीन जगह टेढ़ा भया, ऊँचा ताकै सोय ॥ ९ ॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर ।
पंथी को छाया नहीं, फल लागै अति दूर ॥१०॥
कबीर अपने जीव तें, ये दो बातैं धोय ।
मान बड़ाई कारने, आछत मूल न खोय ॥११॥

(१) मजबूत टाट के थैले । (२) सिर ऊँचा करके नमस्कार करै ।

भक्त रु भगवँत एक है, बूझत नहीं अजान।
सीस नवावत संत को, बड़ा करै अभिमान ॥१२॥
प्रभुता को सब कोउ भजे, प्रभु को भजै न कोय।
कह कबीर प्रभु को भजे, प्रभुता चेरी होय ॥१३॥
जहँ आपा तहँ आपदा, जहँ संसय तहँ सोग।
कह कबीर कैसे मिटै, चारो दीरघ रोग ॥१४॥
अहं अगिन हिरदे जरै, गुरु से चाहै मान।
तिन को जम न्योता दिया, हो हमरे मिहमान ॥१५॥
ऊँचा कुल नीचा मता, नाहिं गुरू से हेत।
हीन गिनै हरि भक्त को, खासी खता अनेक ॥१६॥
ऊँचे कुल के कारने, भूला सब संसार।
तब कुल की क्या लाज है, यह तन होवै छार ॥१७॥
हस्ती चढ़ि के जो फिरै, ऊपर चँवर ढुराय।
लोग कहैं सुख भोगवै, सीधे दोजख जाय ॥१८॥
जौन मिला सो गुरु मिला, चेला मिला न कोय।
चेला को चेला मिलै, तब कछु होय तो होय ॥१९॥
बड़ा बड़ाई ना तजै, छोटा बहु इतराय।
ज्यों प्यादा फरजी भया, टेढ़ा टेढ़ा जाय[1] ॥२०॥
जग में बैरी कोउ नहीं, जो मन सीतल होय।
यह आपा तू डारि दे दया करै सब कोय ॥२१॥

६—कपट का अंग

कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ कपट का हेत।
जानो कली अनार की, तन राता[2] मन सेत[3] ॥ १ ॥
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ न चोखा चित्त।
परपूटा अवगुन घना, मुहँड़े ऊपर मित्त[4] ॥ २ ॥

(१) शतरंज के खेल में जब प्यादा वजीर बन जाता है तो वह टेढ़ा चल सकता है।
(२) लाल, रंगीन। (३) सपेद। (४) पीठ पीछे बुराई करै और मुँह पर बड़ाई।

चित कपटी सब से मिलै, माहीं कुटिल कठोर।
इक दुर्जन इक आरसी, आगे पीछे और ॥ ३ ॥
हेत प्रीति से जो मिलै, ता को मिलिये धाय।
अंतर राखे जो मिलै, ता से मिलै बलाय ॥ ४ ॥
नवनि नवा तो क्या हुआ, सूधा चित्त न ताहि।
पारधिया[1] दूना नवै, मिरगहिं ढूकै जाहि ॥ ५ ॥

७—आसा का अंग

आसा जीवै जग मरै, लोक मरै मन जाहि।
धन संचै सो भी मरै, उबरै सो धन खाहि ॥ १ ॥
आसा बेली कर्म बन, बाढ़त मन के साथ।
त्रिस्ना फूल चौगान में, फल करता के हाथ ॥ २ ॥
जो तू चाहै मुज्झ को, राखो और न आस।
मुझहि सरीखा ह्वै रहो, सब सुख तेरे पास ॥ ३ ॥
आसा मनसा दुइ नदी, तहाँ न पग ठहराय।
इन दोनों को लाँघि कै, चौड़े बैठो जाय ॥ ४ ॥
चौड़ा बैठा जाइ कै, नाम धरा रनजीत।
साहिब न्यारा देखिया, अंतरगत की प्रीत ॥ ५ ॥
आस बास[2] जग फंदिया, रहा अरध लपटाय।
नाम आस पूरन करै, सकल आस मिटि जाय ॥ ६ ॥
आसन मारे क्या भया, मुई न मन की आस।
ज्यों तेली के बैल को, घर ही कोस पचास ॥ ७ ॥
कबीर जग को कहा कहूँ, भवजल बूड़े दास।
सतगुरु सम पति छोड़ि के, करै मनुष की आस ॥ ८ ॥
आसा एक जो नाम की, दूजी आस निरास।
पानी माहीं घर करै, सो भी मरै पियास ॥ ९ ॥

---

(१) शिकारी। (२) बासना।

आसा एक जो नाम की, दूजी आस निवारि।
दुजी आसा मारसी, ज्यों चौपड़ की सार ॥१०॥
कबीर जोगी जगत-गुरु, तजै जगत की आस।
जो जग की आसा करै, तो जगत गुरु वह दास ॥११॥
बहुत पसारा जनि करै, कर थोरे की आस।
बहुत पसारा जिन किया, तेई गये निरास ॥१२॥
आसा का इंधन करूँ, मनसा करूँ भभूत।
जोगी फिरि फेरी करूँ, यों बनि आवै सूत ॥१३॥

८—तृष्णा का अंग

कबीर सो धन संचिये, जो आगे को होय।
सीस चढ़ाये गाठरी, जात न देखा कोय ॥ १ ॥
त्रिस्ना केरि बिसेषता, कहँ लगि करौं बखान।
देंह मरै इंद्री मरै, त्रिस्ना मरि न निदान ॥ २ ॥
की त्रिस्ना है डाकिनी, की जीवन का काल।
और और निसि दिन चहै, जीवन करै बिहाल ॥ ३ ॥
त्रिस्ना अग्नि प्रलय किया, तृप्त न कबहूँ होय।
सुर नर मुनि औ रंक सब, भस्म करत है सोय ॥ ४ ॥
नामहिं छोटा जानि कै, दुनिया आगे दीन।
जीवन को राजा कहै, त्रिस्ना के आधीन ॥ ५ ॥

नवरत्न वा सकारी अंग

१—शील का अंग

सील छिमा जब ऊपजै, अलख दृष्टि तब होय।
बिना सील पहुँचै नहीं, लाख कथै जो कोय ॥ १ ॥
सीलवंत सब तें बड़ा, सर्ब रतन की खानि।
तीन लोक की सपदा, रही सील में आनि ॥ २ ॥
ज्ञानी ध्यानी संजमी, दाता सूर अनेक।

जपिया तपिया बहुत हैं, सीलवंत कोइ एक ॥ ३ ॥
सुख का सागर सील है, कोइ न पावै थाह ।
सबद बिना साधू नहीं, द्रव्य बिना नहिं साह ॥ ४ ॥
बिषय पियारे प्रीति से, तब लगि गुरुमुख नाहिं ।
जब अंतर सतगुरु बसैं, बिषया से रुचि नाहिं ॥ ५ ॥
सील गहै कोइ सावधान, चेतन पहरे जागि ।
बासन बासन के खिसे, चोर न सकई लागि ॥ ६ ॥
आव कहै सो औलिया, बैठु कहै सो पीर ।
जा घर आव न बैठु है, सो काफिर बेपीर ॥ ७ ॥
घायल ऊपर घाव लै, टोटे त्यागी सोय ।
भर जोबन में सीलवँत, बिरला होय तो होय ॥ ८ ॥

२—क्षमा का अंग

छिमा क्रोध को छय करै, जो काहू पै होय ।
कह कबीर ता दास को, गंजि न सक्कै कोय ॥ १ ॥
छिमा बड़न को चाहिये, छोटन को उतपात ।
कहा बिस्नु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात ॥ २ ॥
भली भली सब कोउ कहै, रहो छिमा ठहराय ।
कह कबीर सीतल भया, गई जो अग्नि बुझाय ॥ ३ ॥
जहाँ दया तहँ धर्म है, जहाँ लोभ तहँ पाप ।
जहाँ क्रोध तहँ काल है, जहाँ छिमा तहँ आप ॥ ४ ॥
गारी से सब ऊपजै, कलह कष्ट अरु मीच ।
हार चलै सो संत है, लागि मरै सो नीच ॥ ५ ॥
करगस[1] सम दुर्जन बचन, रहै संत जन टारि ।
बिजुली परै समुद्र में, कहा सकैगी जारि ॥ ६ ॥
चोट सुहेली सेल की, पड़ते लेय उसास ।
चोट सहारै सबद की, तासु गुरू मैं दास ॥ ७ ॥

(१) तीर ।

खोद खाद धरती सहै, काट कूट बनराय।
कुटिल बचन साधू सहै, और से सहा न जाय ॥ ८ ॥

३—संतोष का अंग

साध संतोषी सर्बदा, निरमल जा के बैन।
ता के दरसन परस तें, जिय उपजै सुख चैन ॥ १ ॥
चाह गई चिंता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह।
जिन को कछू न चाहिये, सोई साहंसाह ॥ २ ॥
माँगन गये सो मरि रहे, मरे सो माँगन जाहिं।
तिन से पहिले वे मरे, जो होत करत हैं नाहिं ॥ ३ ॥
अनमाँगा तो अति भला, माँगि लिया नहिं दोष।
उदर समाना माँगि ले, निस्चय पावै मोष ॥ ४ ॥
उत्तम भिषि है अजगरी, सुनि लीजै निज बैन।
कह कबीर ता के गहे, महा परम सुख चैन ॥ ५ ॥
गोधन गजधन बाजधन, और रतन धन खान।
जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान ॥ ६ ॥
मरि जाऊँ माँगूँ नहीं, अपने तन के काज।
परमारथ के कारने, मोहिं न आवै लाज ॥ ७ ॥

४—धीरज का अंग

धीर होइ धमक[1] सहौ, ज्यों अहरन सिर घाव।
मेघा पर्बत ह्वै रहौ, इत उत कहूँ न जाव ॥ १ ॥
धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कछु होय।
माली सींचै सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय ॥ २ ॥
कबीर धीरज के धरे, हाथी मन भर खाय।
टूक एक के कारने, स्वान घरै घर जाय ॥ ३ ॥
कबीर तूँ काहे डरै, सिर पर सिरजनहार।
हस्ती चढ़ि कर डोलिये, कूकर भुसै हजार ॥ ४ ॥

(१) चोट।

कबीर भँवर में बैठि कै, भौचक मना न जोय।
डूबन का भय छाड़ि दे, करता करै सु होय॥ ५॥
मैं मेरी सब जायगी, तब आवैगी और।
जब यह निःचल होयगा, तब पावैगा ठौर॥ ६॥

५—दीनता का अंग

दीन गरीबी बंदगी, साधन से आधीन।
ता के सँग मैं यों रहूँ, ज्यों पानी सँग मीन॥ १॥
दीन लखै मुख सबन को, दीनहिं लखै न कोय।
भली बिचारी दीनता, नरहुँ देवता होय॥ २॥
इक बानी जो दीनता, संतन कियो बिचार।
यही भेंट गुरुदेव की, सब कछु गुरु दरबार॥ ३॥
दीन गरीबी बन्दगी, सब से आदर भाव।
कह कबीर तेई बड़ा, जा में बड़ा सुभाव॥ ४॥
नहीं दीन नहिं दीनता, संत नहीं मिहमान।
ता घर जम डेरा किया, जीवत भया मसान॥ ५॥
कबीर नवै सो आप को, पर को नवै न कोय।
घालि तराजू तोलिये, नवै सो भारी होय॥ ६॥
आपा मेटे पिउ मिलै, पिउ में रहा समाय।
अकथ कहानी प्रेम की, कहै तो को पतियाय॥ ७॥
ऊँचे पानी ना टिकै, नीचे ही ठहराय।
नीचा होय सो भार पिवै, ऊँचा प्यासा जाय॥ ८॥
नीचे नीचे सब तरे, जेते बहुत अधीन।
चढ़ि बोहित[1] अभिमान की, बूड़े ऊंच कुलीन॥ ९॥
सब तें लघुताई भली, लघुता तें सब होय।
जस दुतिया की चन्द्रमा, सीस नवै सब कोय॥१०॥

(१) नाव।

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजौं आपना, मुझसा बुरा न होय ॥११॥
कबीर सब तें हम बुरे, हम तें भल सब कोय।
जिन ऐसा करि बूझिया, मित्र हमारा सोय ॥१२॥

६—दया का अंग

दया भाव हिरदे नहीं, ज्ञान कथै बेहद।
ते नर नरकहिं जाहिंगे, सुनि सुनि साखी सब्द ॥ १ ॥
दाया दिल में राखिये, तू क्यों निरदै होय।
साईं के सब जीव हैं, कीड़ी कुंजर सोय ॥ २ ॥
हम रोवैं संसार को, रोय न हम को कोय।
हम को तो सो रोइहै, जो सबद-सनेही होय ॥ ३ ॥
बैरागी ह्वै गेह तजि, पग पहिरै पैजार।
अंतर दया न ऊपजै, घनी सहैगा मार ॥ ४ ॥

७—साच का अंग

साच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जा के हिरदे साच है, ता हिरदे गुरु आप ॥ १ ॥
साईं से साचा रहौ, साईं साच सुहाय।
भावै लम्बे केस रखु, भावै घोट मुँड़ाय ॥ २ ॥
साचे स्राप न लागई, साचे काल न खाय।
साचे को साचा मिलै, साचे माहिं समाय ॥ ३ ॥
साचै सौदा कीजिये, अपने जिव में जानि।
साचै हीरा पाइये, झूठै मूलहुँ हानि ॥ ४ ॥
जो तू साचा बानिया, साची हाट लगाय।
अंदर झाड़ू देइ कै, कूड़ा दूरि बहाय ॥ ५ ॥
तेरे अंदर साच जो, बाहर नाहिं जनाव।
जाननहारा जानिहै, अंतरगति का भाव ॥ ६ ॥

जा की साची सुरत है, ता का साचा खेल।
आठ पहर चौंसठ घरी, साईं सेती मेल ॥ ७ ॥
साच बिना सुमिरन नहीं, भय बिन भक्ति न होय।
पारस में परदा रहै, कंचन केहि बिधि होय ॥ ८ ॥
अब तो हम कंचन भये, तब हम होते काच।
सतगुरु की किरपा भई, दिल अपने का साच ॥ ९ ॥
कंचन केवल हरि भजन, दूजा काच कथीर।
झूठा जाल जँजाल तजि, पकड़ा साच कबीर ॥१०॥
प्रेम प्रीति का चोलना, पहरि कबीरा नाच।
तन मन ता पर वारहूँ, जो कोइ बोलै साच ॥११॥
साच सबद हिरदे गहा, अलख पुरुष भरपूर।
प्रेम प्रीति का चोलना, पहिरे दास हजूर ॥१२॥
साधू ऐसा चाहिये, साची कहै बनाय।
कै टूटे कै फिरि जुरै, कहे बिन भरम न जाय ॥१३॥
जिन नर साच पिछानियाँ, करता केवल सार।
सो प्रानी काहे चलै, झूठे कुल की लार ॥१४॥
कबीर लज्जा लोक की, बोलै नाहीं साच।
जानि बूझि कंचन तजै, क्यों तू पकरै काच ॥१५॥
झूठ बात नहिं बोलिये, जब लगि पार बसाय।
अहो कबीरा साच गहु, आवा गवन नसाय ॥१६॥
साचै कोइ न पतीजई, झूठे जब पतियाय।
गली गली गोरस फिरै, मदिरा बैठि बिकाय ॥१७॥
साच कहूँ तो मारि हैं, झूठे जग पतियाय।
ये जग काली कूकरी, जो छेड़ै तो खाय ॥१८॥
साचे को साचा मिलै, अधिका बढ़ै सनेह।
झूठे को साचा मिलै, तड़दे टूटे नेह ॥१९॥

जा के बोली बन्ध नहिं, साच नहीं मन माहिं।
ता के संग न चालिये, छाड़ै पैंड़े माहिं ॥२०॥
कबीर पूँजी साहु की, तू मत खोवै ख्वार।
खरी बिगुर्चन होयगी, लेखा देती बार ॥२१॥
लेखा देना सहज है, जो दिल साचा होय।
साइ के दरबार में, पला न पकरै कोय ॥२२॥
साच सुनै अरु सत कहै, सत्त नाम की आस।
सत्त नाम कों जानि करि, जग से रहै उदास ॥२३॥
साच हुआ तो क्या हुआ, (जो) नाम न साचा जान।
साचा है साचै मिलै, (तब) साचै माहिं समान ॥२४॥
साचा सबद कबीर का, हिरदय देखु बिचारि।
चित दै समुझत है नहीं, (मोहिं) कहत भये जुग चारि ॥२५॥

८—बिचार का अंग

आगि कहे दाझै नहीं, पाँव न दीजै माहँ।
जो पै भेद न जानई, नाम कहा तौ काह ॥ १ ॥
कबीर सोच बिचारिया, दूजा कोई ना हैं।
आपा परे जब चीन्हिया, उलटि समाना माहिं ॥ २ ॥
पानी केरा पूतला, राखा पवन सँवार।
नाना बानी बोलता, जोति धरी करतार ॥ ३ ॥
आधी साखी सिर कटै, जो रे बिचारी जाय।
मनहिं प्रतीत न ऊपजै, राति दिवस भरि गाय ॥ ४ ॥
एक सबद में सब कहा, सबही अर्थ बिचार।
भजिये निर्गुन नाम को, तजिये बिषय बिकार ॥ ५ ॥
बोली तो अनमोल है, जो कोइ जानै बोल।
हिये तराजू तोलि के, तब मुख बाहर खोल ॥ ६ ॥
सहज तराजू आनि करि, सब रस देखा तोल।

सब रस माहीं जीभ रस, जो कोइ जानै बोल ॥ ७ ॥
ज्यों आवै त्योंहीं कहै, बोलै नाहिं बिचारि ।
हतै पराई आत्मा, जीभ लेइ तरवारि ॥ ८ ॥
बोलै बोल बिचार कै, बैठै ठौर सँभारि ।
कह कबीर वा दास की, कबहुँ न आवै हारि ॥ ९ ॥
बोली हमरी पलटिया, या तन याही देस ।
खारी से मीठी करी, सतगुरु के उपदेस ॥१०॥
कबीर उलटे ज्ञान का, कैसे करूँ बिचार ।
थिर बैठे मारग कटै, चला चली नहिं पार ॥११॥
जो कछु करै बिचारि कै, पाप पुन्न तें न्यार ।
कह कबीर इक जानि कै, जाय पुरुष दरबार ॥१२॥
आचारी सब जग मिला, बिचारी मिला न कोय ।
कोटि अचारी वारिये, इक बिचारि जो होय ॥१३॥

९—बिबेक का अंग

फूटी आँखि बिबेक की, लखै न संत असंत ।
जा के के सँग दस बीस हैं, ता का नाम महंत ॥ १ ॥
साधू मेरे सब बड़े, अपनी अपनी ठौर ।
सबद बिबेक पारखी, सो माथे के मौर ॥ २ ॥
जब लगि नाहिं बिबेक मन, तब लगि लगै न तीर ।
भवसागर नाहीं तरै, सतगुरु कहैं कबीर ॥ ३ ॥
गुरुपसु नरपसु नारिपसु, बेदपसू संसार ।
मानुष सोई जानिये, जाहि बिबेक बिचार ॥ ४ ॥
प्रगटै प्रेम बिबेक दल, अभय निसान बजाय ।
उग्र ज्ञान उर आवताँ, यह सुनि मोह दुराय ॥ ५ ॥
कर बन्दगी बिबेक की भेष धरै सब कोय ।
वा बँदगी बहि जानि दे, (जहँ) सबद बिबेक न होय ॥ ६ ॥

कहै कबीर पुकारि कै, कोइ संत बिबेकी होय।
जा में सबद बिबेक है, छत्र-धनी है सोय ॥ ७ ॥
जीव जंतु जलहर बसै, गये बिबेक जु भूल।
जल के जलचर यों कहैं, हम उड़गन[1] समतूल ॥ ८ ॥
सत्तनाम सब कोइ कहै, कहिबे माहिं बिबेक।
एक अनेकै फिरि मिलै, एक समाना एक ॥ ९ ॥
समझा समझा एक है, अनसमझा सब एक।
समझा सोई जानिये, जा के हृदय बिबेक ॥१०॥

बुद्धि और कुबुद्धि का अंग

बुद्धि बिहूना आदमी, जानै नहीं गँवार।
जैसे कपि परबस पर्‌यो, नाचै घर घर बार[2] ॥ १ ॥
बुद्धि बिहूना अंध गज, पर्‌यो फंद में आय।
ऐसे ही सब जग बँधा, कहा कहौं समझाय ॥ २ ॥
पंख छता[3] परिबस पर्‌यो, सूवा के बुधि नाहिं।
बुद्धि बिहूना आदमी, यों बन्धा जग माहिं ॥ ३ ॥
बुद्धि बिहूना सिंह ज्यों, गयो ससा के संग।
अपनी प्रतिमा देखि कै, कीन्ह्यो तन को भंग ॥ ४ ॥
अकिल अरस से ऊतरी, बिधना दीन्ही बाँटि।
एक अभागी रहि गया, एकन लीन्ही छाँटि ॥ ५ ॥
बिना वसीले चाकरी, बिना बुद्धि की देह।
बिना ज्ञान का जोगना, फिरै लगाये खेह ॥ ६ ॥
गुन गाड़ै औगुन खनै, जिभ्या कटुक कुदार।
ऐसा मूरख दुर्जना, नरक जाय जम द्वार ॥ ७ ॥
समझा का घर और है, अनसमझा का और।
जा घर में साहिब बसैं, बिरला जानै ठौर ॥ ८ ॥

---

(१) तारा। (२) द्वार। (३) आछत।

मूरख को समझावते, ज्ञान गाँठि को जाय।
कोइला होइ न ऊजरो, नौ मन साबुन लाय॥ ९॥
कोइला भी होइ ऊजरो, जरि बरि होय जो स्वेत।
मूरख होय न ऊजरो, ज्यों कालर[1] का खेत॥१०॥
मूरख से क्या बोलिये, सठ से कहा बसाय।
पाहन में क्या मारिये, चोखा तीर नसाय॥११॥
पसुआ से पाला परा, रहि रहि हिये में खीज।
ऊसर परा न नीपजे, केतक डारौ बीज॥१२॥
एक सबद से सब कहै, गुरु सिष्य समझाय।
समझाया समझै नहीं, फिरि फिरि पूछै आय॥१३॥

मन का अंग

मन के मते न चालिये, मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार है, सो साधू कोइ एक॥ १॥
मन-मुरीद संसार है, गुरु-मुरीद कोइ साध।
जो मानै गुरु बचन को, ता का मता अगाध॥ २॥
मन को मारूँ पटकि के, टूक टूक ह्वै जाय।
बिष की क्यारी बोइ के, लुनता क्यों पछिताय॥ ३॥
मन को मारूँ पटकि के, टूक टूक ह्वै जाय।
टूटे पीछे फिरि जुरै, बीच गाँठि परि जाय॥ ४॥
यह मन फटकि पिछोरि ले, सब आपा मिटि जाय।
पिंगल ह्वै पिउ पिउ करै, ता को काल न खाय॥ ५॥
मन पाँचो के बस परा, मन के बस नहिं पाँच।
जित देखूँ तित दौं लगो, जित भागूँ तित आँच॥ ६॥
कबीर बैरी सबल हैं, एक जीव रिपु पाँच।
अपने अपने स्वाद को, बहुत नचावैं नाँच॥ ७॥

---

(१) रेहार यानी रेह का।

कबीर मन तो एक है, भावै तहाँ लगाय।
भावै गुरु की भक्ति कर, भावै विषय कमाय ॥ ८ ॥
मन के मारे बन गये, बन तजि बस्ती माहिं।
कह कबीर क्या कीजिये, यह मन ठहरै नाहिं ॥ ९ ॥
तीन लोक चोरी भई, सब का धन हर लीन्ह।
बिना सीस का चोरवा, पड़ा न काहू चीन्ह ॥१०॥
चोर भरोसे साहु के, लाया बस्तु चुराय।
पहिले बाँधो साहु को, चोर आप बँधि जाय ॥११॥
कबीर यह मन मसखरा, कहौं तो मानै रोस।
जा मारग साहिब मिलै, तहाँ न चालै कोस ॥१२॥
जेती लहर समुद्र की, तेती मन की दौर।
सहजै हीरा नीपजै, जो मन आवै ठौर ॥१३॥
समुँद लहर तो थोड़िया, मन लहरैं घनियाय।
केतो आइ समाइहै, केति जाइ बिसराय ॥१४॥
कबीर लहर समुद्र की, केती आवैं जाहिं।
बलिहारी वा दास की, उलटि समावै वाहिं ॥१५॥
दौड़त दौड़त दौड़िया, जहँ लगि मन की दौड़।
दौड़ थका मन थिर भया, बस्तु ठौर की ठौर ॥१६॥
पहिले यह मन काग था, करता जीवन घात।
अब तो मन हंसा भया, मोती चुगि चुगि खात ॥१७॥
कबीर मन परबत हुआ, अब मैं पाया जानि।
टाँकी लागी सबद की, निकसी कंचन खानि ॥१८॥
अगम पथ मन थिर करै, बुद्धि करै परबेस।
तन मन सबही छाड़ि के, तब पहुँचै वा देस ॥१९॥
मनहीं को परमोधिये, मनहीं को उपदेस।
जो यहि मन को बसि करै, (तो) सिष्य होय सब देस ॥२०॥

कबीर सीढ़ी साँकरी, चंचल मनुवाँ चोर।
गुन गावै लौलीन है, मन में कछु इक और ॥२१॥
चंचल मनुवाँ चेत रे, सोवै कहा अजान।
जमधर[1] जम ले जायगा, पड़ा रहैगा म्यान ॥२२॥
कबीर मन मैला भया, या में बहुत बिकार।
यह मन कैसे धोइये, साधो करो बिचार ॥२३॥
गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजनहार।
सुरत सिला पर धोइये, निकसै रंग अपार ॥२४॥
मन गोरख मन गोबिन्दा, मनहीं औघड़ सोय।
जो मन राखै जतन करि, आपै करता होय ॥२५॥
पय पानी की प्रीतड़ी, पड़ा जो कपटी नोन।
खंड खंड न्यारे भये, ताहि मिलावै कौन ॥२६॥
मन मोटा मन पातरा, मन पानी मन लाय[2]।
मन के जैसी ऊपजे, तैसी ही है जाय ॥२७॥
मन दाता मन लालची, मन राजा मन रंक।
जो यह मन गुरु से मिलै, तौ गुरु मिलै निसंक ॥२८॥
कबहूँ मन गगना चढ़ै, कबहूँ गिरै पताल।
कबहूँ मन उनमुनि लगै, कबहूँ जावै चाल ॥२९॥
मन के बहुतक रंग हैं, छिन छिन बदलै सोय।
एकै रँग में जो रहै, ऐसा बिरला कोय ॥३०॥
कोठि करम पल में करै, यह मन बिषया स्वाद।
सतगुरु सबद न मानही, जनम गँवावै बाद ॥३१॥
कबीर मन गाफिल भया, सुमिरन लागै नाहिं।
घनी सहैगा सासना, जम की दरगाह माहिं ॥३२॥
कागद केरी नावरी, पानी केरी गंग।

(१) तलवार। (२) आग।

कह कबीर कैसे तरूँ, पाँच कुसंगी संग ॥३३॥

इन पाँचो से बँधि करि, फिर फिर धरै सरीर।
जो यह पाँचो बसि करै, सोइ लागै तीर[1] ॥३४॥

मनुवाँ तो पंछी भया, उड़ि के चला अकास।
ऊपर ही तें गिरि पड़ा, मन माया के पास ॥३५॥

मन पंछी तब लगि उड़ै, बिषय बासना माहिं।
प्रेम बाज की झपट में, जब लगि आयो नाहिं ॥३६॥

जहाँ बाज बासा करै, पंछी रहै न और।
जा घट प्रेम प्रगट भया, नाहिं करम को ठौर ॥३७॥

मन कुंजर महमंत था, फिरता गहिर गँभीर।
दुहरी तिहरी चौहरी, परि गइ प्रेम जँजीर ॥३८॥

अपने अपने चोर को, सब कोइ डारै मार।
मेरा चोर मुझे मिलै, तो सरबस डारूँ वार ॥३९॥

कबीर यह मन लालची, समझै नहीं गँवार।
भजन करन को आलसी, खाने को हुसियार ॥४०॥

या तन में मन कहँ बसै, निकसि जाय केहि ठौर।
गुरु गम होय तो परखि ले, नहिं तो कर गुरु और ॥४१॥

नैनों माहीं मन बसै, निकसि जाय नौ ठौर।
गुरु गम भेद बताइया, सब संतन सिर मौर ॥४२॥

यह तो गति है अटपटी, सटपट लखै न कोय।
जो मन की खटपट मिटै, चटपट दरसन होय ॥४३॥

हिरदे भीतर आरसी, मुख देखा नहिं जाय।
मुख तौ तबहीं देखसी, दिल की दुबिधा जाय ॥४४॥

तन माहीं जो मन धरै, मन धरि उज्जल होय।
साहिब से सन्मुख रहै, अजर अमर सो होय ॥४५॥

(१) किनारे।

पानी हूँ तें पातला, धूआँ हूँ तें झीन।
पवन हूँ तें ऊतावला[1], दोस्त कबीरा कीन्ह ॥४६॥
मेरा मन हंसा रमै, हंसा गमनि रहाय।
बगुला मन मानै नहीं, घर आँगन फिरि जाय ॥४७॥
पुहुप बास तें पातला, सूच्छम जा को रंग।
कबीर ता से मिलि रहा, कबहुँ न छोड़ै संग ॥४८॥
मन मनसा को मारि ले, घट ही माहीं घेर।
जब ही चालै पीठि दै, आँकुस दै दै फेर ॥४९॥
मन मनसा को मारि करि, नन्हा करि के पीस।
तब सुख पावै सुन्दरी, पदुम झलक्कै सीस ॥५०॥
मन मनसा जब जायगी, तब आवैगी और।
जब मन निःचल होयगा, तब पावैगा ठौर ॥५१॥
काया कजली बन अहै, मन कुंजर महमंत।
आँकुस ज्ञान रतन्न का, फेरै बिरला संत ॥५२॥
कबीर मनहिं गजंद है, आँकुस दै दै राखु।
बिष की बेली परिहरो, अमृत का फल चाखु ॥५३॥
काया देवल मन धुजा, बिषय लहरि फहराय।
मन चालै देवल चलै, ता को सरबस जाय ॥५४॥
काया कसौं कमान ज्यौं पाँच तत्त करि बान।
मारो तौ मन मिरग को, नातरु मिथ्या जान ॥ ५५॥
सुर नर मुनि सब को ठगे, मनहिं लिया अवतार।
जो कोई या तें बचै, तीन लोक तें न्यार ॥५६॥
कुंभै बाँधा जल रहै, जल बिनु कुम्भ न होय।
ज्ञानै बाँधा मन रहै, मन बिनु ज्ञान न होय ॥५७॥
मन माया तो एक है, माया मनहिं समाय।

---

(१) तेज।

तीन लोक संसय परी, काहि कहौं समझाय ॥५८॥
मन माया की कोठरी, तन संसय को कोट।
बिषहर मंत्र मानै नहीं, काल सर्प की चोट ॥५९॥

मन सायर मनसा लहरि, बूड़े बहे अनेक।
कह कबीर ते बाँचिहै, जा के हृदय बिबेक ॥६०॥

नैनन आगे मन बसै, रल पिल करै जो दौर।
तीन लोक मन भूप है, मन पूजा सब ठौर ॥६१॥

तन बोहित[1] मन काग है, लख जोजन उड़ि जाय।
कबहीं दरिया अगम बहि, कबहीं गगन समाय ॥६२॥

॥ सोरठा ॥

मन जानै सब बात, जानि बूझि औगुन करै।
काहे की कुसलात, लै दीपक कूँए परै ॥६३॥

॥ साखी ॥

कबीर मन मरकट भया, नेक न कहुँ ठहराय।
सत्त नाम बाँधे बिना, जित भावै तित जाय ॥६४॥

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
कह कबीर पिउ पाइये, मनहीं की परतीत ॥६५॥

मन जो गया तो जानि दे, दृढ़ करि राखु सरीर।
बिना चढ़े कमान के, कैसे लागै तीर ॥६६॥

बिना सीस का मिरग है, चहुँ दिसि चरने जाय।
बाँधि लाव गुरु ज्ञान से, राखौ तत्त लगाय ॥६७॥

तन तुरंग असवार मन, कर्म पियादा साथ।
त्रिस्ना चली सिकार को, बिषै बाज लिये हाथ ॥६८॥

---

(१) नाव।

मना मनोरथ छाड़ि दे, तेरा किया न होय।
पानी में घी नीकसै, सूखा खाय न कोय ॥६६॥

कहत सुनत सब दिन गये, उरझि न सुरझा मन।
कह कबीर चेता नहीं, अजहूँ पहिला दिन ॥७०॥

मन नाहीं छाड़ै बिषय, बिषय न मन को छाड़ि।
इन का यही सुभाव है, पूरी लागी आड़ि[1] ॥७१॥

अकथ कथा या मनहिं की, कह कबीर समझाय।
जा को येहि समझि परे, ता को काल न खाय ॥७२॥

मेरा मन मकरंद था, करता बहुत बिगार।
सूधा ह्वै मारग चला, गुरु आगे हम लार ॥७३॥

मनुवाँ तो अंतर बसा, बहुतक झीना होय।
अमर लोक सुचि[2] पाइया, कबहुँ न न्यारा होय ॥७४॥

माया का अंग

माया छाया एक सी, बिरला जानै कोय।
भगता के पाछे फिरै, सनमुख भागै सोय ॥ १ ॥[3]

कबीर माया पापिनी, माँगी मिलै न हाथ।
मना उतारी झूठ करि, (तब) लागी डोलै साथ ॥ २ ॥

माया तो ठगनी भई, ठगत फिरै सब देस।
जा ठग या ठगनी ठगी, ता ठग को आदेस ॥ ३ ॥

कबीर माया पापिनी, फँद लै बैठी हाट।
सब जग तो फंदे परा, गया कबीरा काट ॥ ४ ॥

कबीर माया पापिनी, ताही लाये लोग।

---

(१) अड़, हठ। (२) पवित्रता, निरमलता। (३) जो माया अर्थात् संसार से भागै उसके तो वह छाया की नाईं पीछे लगी फिरती है और जो उसके सन्मुख होकर उसका याचक हो उससे भागती है अर्थात् नहीं मिलती।

पूरी किनहुँ न भोगिया, या का यही बियोग ॥ ५ ॥
कबीर माया बेसवा, दोनों की इक जाति ।
आवत कौं आदर करै, जाति न पूछै बाति ॥ ६ ॥
मोती उपजै सीप में, सीप समुन्दर जोय ।
रंचक संचर[1] रहि गया, ना कछु हुआ न होय ॥ ७ ॥
कबीर माया रूखड़ी, दो फल की दातार ।
खावत खरचन मुक्ति भै, संचत नरक दुवार ॥ ८ ॥
खान खरचन बहु अंतरा, मन में देखु बिचार ।
एक खवाया साधु को, एक मिलाया छार ॥ ९ ॥
कबीर माया जात है, सुनो सबद निज मोर ।
सखियों[2] के घर संतजन, सूमों के घर चोर ॥१०॥
संतों खाई रहत है, चोरा लीन्ही जाय ।
कहै कबीर बिचारि के, दरगह मिलिहै आय ॥११॥
माया तो है राम की, मोदी सब संसार ।
जा को चिट्ठी ऊतरी, सोई खरचनहार ॥१२॥
माया संचै संग्रहै, वह दिन जानै नाहिं ।
सहस बरस की सब करै, मरै महूरत[3] माहिं ॥१३॥
कबीर सो धन संचिये, जो आगे को होय ।
मूड़ चढ़ाये गाठरी, जात न देखा कोय ॥१४॥
कबीर माया मोहिनी, मोहे जान सुजान ।
भागे हूँ छूटै नहीं, भरि भरि मारै बान ॥१५॥
कबीर माया मोहिनी, जैसी मीठी खाँड ।
सतगुरु की किरपा भई, नातर करती भाँड ॥१६॥
कबीर माया मोहिनी, सब जग घाला घानि ।
कोइ इक साधू ऊबरा, तोड़ी कुल की कानि ॥१७॥

(१) संचार, प्रवेश । (२) दाता । (३) छिन ।

कबीर माया मोहिनी, भइ अँधियारी लोय।
जे सूता तेहि मूसि लै, रहे बस्तु को राय ॥१८॥
माया मन की मोहिनी, सुर नर रहे लुभाय।
माया इन सब खाइया, माया कोइ न खाय ॥१६॥
कबीर माया डाकिनी, सब काहू को खाय।
दाँत उपारूँ पापिनी, (जो) संतों नियरे जाय ॥२०॥
माया दासी संत की, ऊभी[1] देहि असीस।
बिलसी अरु लातों छरी, सुमिरि सुमिरि जगदीस ॥२१॥
मोटी माया सब तजे, झीनी तजी न जाय।
पीर पयम्बर औलिया, झीनी सब को खाय ॥२२॥
झीनी माया जिन तजी, मोटी गई बिलाय।
ऐसे जन के निकट से, सब दुख गयो हिराय ॥२३॥
माया आगे जीव सब, ठाढ़ रहैं कर जोरि।
जिन सिरजा जल बुन्द से, ता से बैठे तोरि ॥२४॥
माया के झक[2] जग जरै, कनक कामिनी लागि।
कह कबीर कस बाचिहै, रुई लपेटी आगि ॥२५॥
मैं जानूँ हरि से मिलूँ, मो मन मोटी आस।
हरि बिच डारै अंतरा, माया बड़ी पिचास[3] ॥२६॥
कबीर माया सूम की, देखनहीं का लाड़।
जो वा में कौड़ी घटै, तो हरि तोड़ै हाड़ ॥२७॥
या माया जग भरमिया, सब को लगी उपाध।
यहि तारन के कारने, जग में आये साध ॥२८॥
कबीर या संसार की, झूठी माया मोह।
जेहि घर जिता बधावना, तेहि घर तेता द्रोह ॥२६॥
भूले थे यहँ आइ के, माया संग लुभाय।

(१) खड़ी। (२) आँच। (३) पिशाच, भूतिनी।

सतगुरु राह बताइया, फेरि मिलूँ तेहि जाय ॥३०॥
सौ पापन को मूल है, एक रुपैया रोक।
साधू ह्वै संग्रह करै, हारै हरि सा थोक[1] ॥३१॥
माया है दुइ भाँति की, देखी ठोंक बजाय।
एक मिलावै नाम से, एक नरक लै जाय ॥३२॥
या माया है चूहड़ी[2], औ चुहड़े की जोय।
बाप पूत अरुझाय कै, संग न केहु के होय ॥३३॥
माया के बस सब परे, ब्रह्मा बिस्नु महेस।
नारद सारद सनक अरु, गौरी-पुत्र गनेस ॥३४॥
आँधी आई ज्ञान की, ढही भरम की भीति।
माया टाटी उड़ि गई, लगी नाम से प्रीति ॥३५॥
मीठा सब कोइ खात है, बिष ह्वै लागै धाय।
नीब न कोई पीवसी, सब रोग मिटि जाय ॥३६॥
माया तरवर त्रिबिधि का, साख बिषय संताप।
सीतलता सपने नहीं, फल फीका तन ताप ॥३७॥
जिन को साईं रँग दिया, कभी न होइँ कुरंग।
दिन दिन बानी आगरी, चढ़ै सवाया रंग ॥३८॥
माया दीपक नर पतँग, भ्रमि भ्रमि माहिं परंत।
कोइ एक गुरु ज्ञान तें, उबरे साधू संत ॥३९॥

कनक और कामिनी का अंग

चलौं चलौं सब कोइ कहै, पहुँचै बिरला कोय।
एक कनक अरु कामिनी, दुरगम घाटी दोय ॥ १ ॥
नारी की झाईं परत, अंधा होत भुजंग।
कबीर तिन की कौन गति, (जो) नित नारी के संग ॥ २ ॥
कामिनि काली नागिनी तीनों लोक मँझारि।

(१) जमा, माल। (२) भंगिन।

नाम सनेही ऊबरे, बिषई खाये झारि ॥ ३ ॥
कामिनि सुन्दर सर्पिनी, जो छेड़ै तेहि खाय ।
जो गुरु चरनन राचिया, तिन के निकट न जाय ॥ ४ ॥
इक नारी इक नागिनी, अपना जाया खाय ।
कबहूँ सरपट नीकसै, उपजै नाग बलाय ॥ ५ ॥
नैनों काजर पाइ कै, गाढ़े बाँधे केस ।
हाथों मिहँदी लाइ कै, बाघिनि खाया देस ॥ ६ ॥
पर नारी के राचने, सीधा नरकै जाय ।
तिन को जम छाड़ै नहीं, कोटिन करै उपाय ॥ ७ ॥
पर नारी पैनी छुरी, मत कोइ लावो अंग ।
रावन के दस सिर गये, पर नारी के संग ॥ ८ ॥
पर नारी पैनी छुरी, बिरला बाचै कोय ।
ना वहि पेट सँचारिये, (जो) सर्ब सोन की होय ॥ ९ ॥
पर नारी का राचना, ज्यों लहसुन की खान[1] ।
कोने बैठि के खाइये, परगट होय निदान ॥१०॥
पर नारी के राचने, औगुन है गुन नाहिं ।
खार समुन्दर माछरी, केती बहि बहि जाहिं ॥११॥
पर नारी पर सुन्दरी, जैसे सूली साल ।
नित कलेस भुगते सही, तहू न छोड़ै खाल ॥१२॥
दीपक सुन्दर देखि कै, जरि जरि मरै पतंग ।
बढ़ी लहर जो बिषय की, जरत न मोड़ै अंग ॥१३॥
नारि पराई आपनी, भोगै नरकै जाय ।
आग आग सब एक सी, हाथ दिये जरि जाय ॥१४॥
जहर पराया आपना, खाये से मरि जाय ।
अपनी रच्छा ना करै, कह कबीर समझाय ॥१५॥

(१) दुर्गन्ध ।

कूप पराया आपना, गिरै बूड़ि जो जाय।
ऐसा भेद बिचारि कै, तू मत गोता खाय ॥१६॥
छुरी पराई आपनी, मारे दर्द जो होय।
बहु बिधि कहूँ पुकारि कै, कर छूवो मत कोय ॥१७॥
नारी निरखि न देखिये, निरखि न कीजै दौर।
देखेही तें बिष चढ़ै, मन आवै कछु और ॥१८॥
जो कबहूँ कै देखिये, बीर बहिन के भाय।
आठ पहर अलगा रहै, ता को काल न खाय ॥१९॥
सर्ब सोने की सुन्दरी, आवै बास सुबास।
जो जननी होय आपनी, तऊ न बैठै पास ॥२०॥
नारि नसावै तीन गुन, जो नर पासे होय।
भक्ति मुक्ति निज ध्यान में, पैठि न सक्कै कोय ॥२१॥
गाय रोय हँस खेलि के, हरत सबन के प्रान।
कह कबीर या घात को, समझैं संत सुजान ॥२२॥
नारी नदी अथाह जल, बूड़ि मुवा संसार।
ऐसा साधू ना मिला, जा संग उतरूँ पार ॥२३॥
गाय भैंस घोड़ी गधी, नारि नाम है तास।
जा मंदिर में यह बसैं, तहाँ न कीजे बास ॥२४॥
नारि रचन्ते पुरुष हैं, पुरुष रचंती नारि।
पुरुष पुरुष तें राचते, ते बिरले संसार ॥२५॥
नारि कहौं की नाहरी, नख सिख से यह खाय।
जल बूड़ा तो ऊबरै, भग बूड़ा बहि जाय ॥२६॥
भग भोगे भग ऊपजे, भग तें बचै न कोय।
कह कबीर भग तें बचै, भक्त कहावै सोय ॥२७॥
सेवक आपना करि लई, आज्ञा मेटै नाहिं।
भग मंतर दे गुरु भई, सिष हो सबै कमाहिं ॥२८॥

कबीर नारि की प्रीति से, केते गये गड़ंत।
केते औरौ जाहिंगे, नरक हसंत हसंत ॥२६॥
फाटे[1] कानों बाघिनी, तीन लोक को खाय।
जीवत खाय कलेजरा, मुए नरक लै जाय ॥३०॥
नारी नाहीं नाहरी, करै नैन की चोट।
कोइ कोइ साधू ऊबरै, लै सतगुरु की ओट ॥३१॥
नारी नाहीं जम अहै, तू मत राचै जाय।
मंजारी[2] ज्यों बोलि कै, काढ़ि करेजा खाय ॥३२॥
नारी नदिया सारिखी, बहै अपरबल पूर।
साहिब से न्यारा रहै, अंत परै मुख धूर ॥३३॥
एक कनक अरु कामिनी, ये लंबी तरवारि।
चाले थे गुरु मिलन को, बीचहिं लीन्हा मारि ॥३४॥
एक कनक अरु कामिनी, दोऊ अगिन की झाल।
देखतही तें परज्वलै, परसि करै पैमाल ॥३५॥
एक कनक अरु कामिनी, बिष फल लिया उपाय।
देखतही तें बिष चढ़ै, चाखतही मरि जाय ॥३६॥
एक कनक अरु कामिनी, तजिये भजिये दूर।
गुरु बिच पारै अंतरा, जम देसी मुख धूर ॥३७॥
रज बीरज की कोठरी, ता पर साज्यो रूप।
एक नाम बिन बूड़सी, कनक कामिनी कूप ॥३८॥
जहाँ जराई सुन्दरी, तू जनि जाय कबीर।
उड़ि के भस्म जो लागसी, सूना होय सरीर ॥३९॥
नारी तौ हम भी करी, जाना नाहिं बिचार।
जब जानी तब परिहरी, नारी बड़ा बिकार ॥४०॥
छोटी मोटी कामिनी, सबही बिष की बेल।

(१) फटकारे हुए। (२) बिल्ली।

बैरी मारै दाँव दै, यह मारै हँसि खेल ॥४१॥
नागिन के तो दोय फन, नारी के फन बीस।
जा का डसा न फिरि जिये, मरिहै बिस्वा बीस ॥४२॥
नारी नदिया सारिखी, और जो प्रगटै काल।
सब कालन तें बाचिहै, नारी जम का जाल ॥४३॥
दीपक झोला पवन का, नर का झोला नारि।
साधू झोला सबद का, बोलै नाहिं बिचारि ॥४४॥
नारि पुरुष की इसतरी, पुरुष नारि का पूत।
याही ज्ञान बिचारि कै, छाड़ि चला अबधूत ॥४५॥
अबिनासी बिच धार तिन[1], कुल कंचन अरु नार।
जो कोइ इन तें बचि चलै, सोई उतरै पार ॥४६॥
नारि से नजरि न जोरिये, अंसहिं खिस है जाय।
जा के चित नारी बसै, चारि अंस लै जाय ॥४७॥

॥ सोरठा ॥

नारी सेती नेह, बुधि बिबेक सबही हरै।
कहा गँवावै देह, कारज कोई ना सरै ॥४८॥

निद्रा का अंग

कबीर सोया क्या करै, जागि के जपो दयार।
एक दिना है सोवना, लम्बे पैर पसार ॥ १ ॥
कबीर सोया क्या करै, उठि न भजो भगवान।
जनधर[2] जब लै जायँगे, पड़ा रहैगा म्यान ॥ २ ॥
कबीर सोया क्या करै सोये होय अकाज।
ब्रह्मा का आसन डिगा, सुनी काल की गाज ॥ ३ ॥
कबीर सोया क्या करै, उठि न रोवै दुक्ख।
जा का बासा गोर[3] में, सो क्यों सोवै सुक्ख ॥ ४ ॥
कबीर सोया क्या करै, जागन की करु चौंप।

(१) तीन। (२) तलवार। (३) कबर।

ये दम हीरा लाल है, गिनिगिनि गुरु को सौंप ॥ ५ ॥
कबीर सोया क्या करै, काहे न देखै जागि ।
जा के सँग तें बीछुरा, ताही के सँग लागि ॥ ६ ॥
नींद निसानी मीच की, उट्ठ कबीरा जागु ।
और रसायन छाड़ि के, नाम रसायन लागु ॥ ७ ॥
सोया सो निस्फल गया, जागा सो फल लेय ।
साहिब हक्क न राखसी, जब माँगै तब देय ॥ ८ ॥
पिउ पिउ कहि कहि कूकिये, ना सोइये इसरार[1] ।
रात दिवस के कूकते, कबहुँक लगै पुकार ॥ ९ ॥
सोता साध जगाइये, करै नाम का जाप ।
यह तीनों सोते भले, साकित सिंह अरु साँप ॥१०॥
जागन से सोवन भला, जो कोइ जानै सोय ।
अन्तर लौ लागी रहै, सहजै सुमिरन होय ॥११॥
जागन में सोवन करै, सोवन में लौ लाय ।
सुरति डोर लागी रहै, तार टूटि नहिं जाय ॥१२॥
कबीर खालिक जागता, और न जागै कोय ।
कै जागै बिषया भरा, कै दास बंदगी सोय ॥१३॥

निंदा का अंग

निन्दक नियरे राखिये, आँगन कुटी छवाय ।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय ॥ १ ॥
निन्दक दूरि न कीजिये, दीजै आदर मान ।
निर्मल तन मन सब करै, बकै आनही आन ॥ २ ॥
निन्दक हमरा जनि मरो, जीवो आदि जुगादि ।
कबीर सतगुरु पाइया, निन्दक के परसादि ॥ ३ ॥
कबीर मेरे साधु की, निन्दा करो न कोय ।

(१) भेद ।

जो पै चन्द्र कलंक है, तऊ उँजारा होय ॥ ४ ॥
जो कोइ निन्दै साधु को, संकट आवै सोइ ।
नरक माहिं जनमै मरै, मुक्ति न कबहूँ होइ ॥ ५ ॥
तिनका कबहुँ न निन्दिये, जो पाँवन तर होय ।
कबहूँ उड़ि आँखिन परै, पीर घनेरी होय ॥ ६ ॥
सातो सायर[1] मैं फिरा जंबु दीप दै पीठ ।
पर निन्दा नाहीं करै, सो कोइ बिरला दीठ ॥ ७ ॥
दोष पराया देख करि, चले हसंत हसंत ।
अपने याद न आवई, जा का आदि न अन्त ॥ ८ ॥
निन्दक एकहु मत मिलै, पापी मिलौ हजार ।
इक निन्दक के सीस पर, कोटि पाप को भार ॥ ९ ॥

[अहार]

स्वादिष्ट भोजन का अंग

खट्टा मीठा चरपरा, जिह्वा सब रस लेय ।
चोरों कुतिया मिलि गई, पहरा किस का देय ॥ १ ॥
खट्टा मीठा देखि कै, रसना मेलै नीर ।
जब लगि मन पाको नहीं, काँचो निपट कथीर ॥ २ ॥
अहार करै मन भावता, जिह्वा केरे स्वाद ।
नाक तलक पूरन भरै, को कहिहै परसाद ॥ ३ ॥
माखी गुरु मैं गड़ि रही, पंख रह्यो लपटाय ।
तारी पीटै सिर धुनै, लालच बुरी बलाय ॥ ४ ॥

माँस अहार का अंग

माँस अहारी मानवा, परतछ राछस अंग ।
ता की संगति मत करो, परत भजन में भंग ॥ १ ॥
माँस मछरिया खात हैं, सुरा पान से हेत ।
सो नर जड़ से जाहिंगे, ज्यों मूरी का खेत ॥ २ ॥

(१) समुद्र ।

माँस माँस सब एक है, मुरगी हिरनी गाय।
आँखि देखि नर खात है, ते नर नरकहिं जाय ॥ ३ ॥
यह कूकर को खान है, मनुष देंह क्यों खाय।
मुख में आमिख[1] मेलता, नरक परे सो जाय ॥ ४ ॥
बिष्ठा[2] का चौका दिया, हाँड़ी सीझै हाड़।
छूत बरावै चाम की, ता का गुरु है राड़[3] ॥ ५ ॥
हनिया सोई हन्नसी, भावै जानि बिजान।
कर गहि चोटी तानसी, साहिब के दीवान ॥ ६ ॥
तिल भर मछरी खाइकै, कोटि गऊ दै दान।
कासी करवत लै मरै, तौ हू नरक निदान ॥ ७ ॥
बकरी पाती खात है, ता की काढ़ी खाल।
जो बकरी को खात हैं, तिन का कौन हवाल ॥ ८ ॥
पीर सबन को एकसी, मूरख जानै नाहिं।
अपना गला कटाइ कै, भिस्त[4] बसै क्यों नाहिं ॥ ९ ॥
मुरगी मुल्ला से कहै, जिबह करत है मोहिं।
साहिब लेखा माँगसी, संकट परिहै तोहिं ॥ १० ॥
काला मुँह कर करद[5] का, दिल से दुई निवार।
सबही सुरति सुभान[6] की, अहमक मुला[7] न मार ॥ ११ ॥
गल गुस्सा को काटिये, मियाँ कहर को मार।
जो पाँचो बिस्मिल[8] करै, तो पावै दीदार ॥ १२ ॥
दिन को रोजा रहत है, रात हनत है गाय।
येह खून वह बन्दगी, कहु क्यों खुसी खुदाय ॥ १३ ॥
खुस खाना है खीचरी, माहिं परा टुक नोन।
माँस पराया खाइ करि, गला कटावै कौन ॥ १४ ॥

(१) माँस। (२) गोबर। (३) कलह। (४) बिहिश्त = बैकुण्ठ। (५) छुरी। (६) खुदा। (७) मुल्ला। (८) जिबह, अधमुआ।

कहता हूँ कहि जात हूँ, कहा जो मान हमार ।
जा का गर तुम काटिहौ, सो फिर काटि तुम्हार ॥१५॥
हिन्दू के दाया नहीं, मिहर तुरुक के नाहिं ।
कह कबीर दोनों गये, लख चौरासी माहिं ॥१७॥

नशे का अंग

गऊ जो बिष्टा भच्छई, बिप्र तमाखू भंग ।
सस्तर बाँधे दर्सनी[1], यह कलिजुग का रंग ॥ १ ॥
कलिजुग काल पठाइया, भाँग तमाल[2] अफीम ।
ज्ञान ध्यान की सुधि नहीं, बसै इन्हीं की सीम[3] ॥ २ ॥
भाँग तमाखू छूतरा, अफयूँ[4] और सराब ।
कह कबीर इन को तजे, तब पावै दीदार ॥ ३ ॥
औगुन कहूँ सराब का, ज्ञानवंत सुनि लेय ।
मानुष से पसुआ करै, द्रब्य गाँठि को देय ॥ ४ ॥
अमल अहारी आत्मा, कबहुँ न पावै पारि ।
कहै कबीर पुकारि कै, त्यागो ताहि बिचारि ॥ ५ ॥
मद तो बहुतक भाँति का, ताहि न जानै कोय ।
तनमद मनमद जातिमद, मायामद सब लोय ॥ ६ ॥
बिद्यामद और गुनहुँ मद, राज मद्द उनमद्द ।
इतने मद को रद करै, तब पावै अनहद्द ॥ ७ ॥
नाम पियाला जो पियै, सो मतवाला नाहिं ।
कबीर मतवाला नाम का, मद मतवाला नाहिं ॥ ८ ॥

सादे खान पान का अंग

रूखा सूखा खाइ कै, ठण्डा पानी पीव ।
देखि बिरानी चूपड़ी, मत ललचावै जीव ॥ १ ॥
कबीर साईं मुज्झ को, रूखी रोटी देय ।

(१) कनफटा साधू । (२) तमाखू । (३) हद में । (४) अफीम ।

चुपड़ी माँगत मैं डरूँ, (कहू) रूखी छीनि न लेय ॥ २ ॥
आधी अरु रूखी भली, सारी से संताप ।
जो चाहैगा चूपड़ी, (तो) बहुत करैगा पाप ॥ ३ ॥
अन पानी आहार है, स्वाद संग नहिं खाय ।
जो चाहै दीदार को, (तो) चुपड़ी चखै बलाय ॥ ४ ॥

आनदेव की पूजा का अंग

सौ बरसाँ भक्ती करै, इक दिन पूजै आन ।
सो अपराधी आतमा, परि चौरासी खानि ॥ १ ॥
सत्त नाम को छाड़ि कै, करै आन को जाप ।
ता के मुहड़े दीजिये, नौसादर को बाप[1] ॥ २ ॥
सत्त नाम को छाड़ि कै, करै और को जाप ।
बेस्या केरे पूत ज्यों, कहै कौन को बाप ॥ ३ ॥
सत्त नाम को छाड़ि कै, करै अन्य की आस ।
कह कबीर ता दास का, होय नरक में बास ॥ ४ ॥
कामी तरै क्रोधी तरै, लोभी तरै अनंत ।
आन उपासी कृतघ्नी, तरै न गुरु कहंत ॥ ५ ॥
देवी देव मानै सबै, अलख न मानै कोय ।
जा अलक्ख का सब किया, ता से बेमुख होय ॥ ६ ॥
एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय ।
जो गहि सेवै मूल को, फूलै फलै अघाय ॥ ७ ॥

मूरत पूजा का अंग

पाहन केरी पूतरी, करि पूजै करतार ।
वाहि भरोसे मत रहो, बूड़ो काली धार ॥ १ ॥
काजर केरी कोठरी, मसि के किये कपाट ।
पाहन भूली पिरथवी, पंडित पारी बाट ॥ २ ॥

(१) बिष्ठा ।

पाहन को क्या पूजिये, जो नहिं देइ जवाब।
अंधा नर आसामुखी, योंहीं होय खराब ॥ ३ ॥
हम भी पाहन पूजते, होते बन के रोझ।
सतगुरु की किरपा भई, डारा सिर का बोझ ॥ ४ ॥
पाहन पूजे हरि मिलै, तौ मैं पूजूँ पहार।
ता तें यह चाकी भली, पीसि खाय संसार ॥ ५ ॥
मूरति धरि धंधा रचा, पाहन का जगदीस।
मोल लिया बोलै नहीं, खोटा बिस्वा बीस ॥ ६ ॥
पाथर ही का देहरा, पाथर ही का देव।
पूजनहारा आँधरा, क्योंकरि मानै सेव ॥ ७ ॥
पाहन पानी पूजि कै, सेवा जासी बाद।
सेवा कीजै साध की, सत्तनाम करु याद ॥ ८ ॥
पाथर लै देवल चुना, मोटी मूरति माहिं।
पिंड फूटि परबस रहै, सो लै तारै काहि ॥ ९ ॥
कागद केरी नावरी, पाहन गरुवा भार।
कहै कबीर बिचारि कै, भव बूड़ा संसार ॥१०॥
कबीर दुनिया देहरे, सीस नवावन जाय।
हिरदे माहीं हरि बसैं, तू ताही लौ लाय ॥११॥
मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जान।
दस द्वारे का देहरा, ता में जोति पिछान ॥१२॥
काँकर पाथर जोरि के, मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय ॥१३॥
मुल्ला चढ़ि किलकारिया, अलख न बहिरा होय।
जेहि कारन तूँ बाँग दे, सो दिलही अंदर जोय ॥१४॥
तुर्क मसीते हिन्दू देहरे, आप आप को धाय।
अलख पुरुष घट भीतरे, ता का द्वार न पाय ॥१५॥

पूजा सेवा नेम ब्रत, गुड़ियन का सा खेल।
जब लगि पिव परसैं नहीं, तब लगि संसय मेंल ॥१६॥
कबीर या संसार को, समझायौ सौ बार।
पूँछ तो पकड़े भेड़ की, उतरा चाहे पार ॥१७॥

तीर्थ ब्रत का अंग

जप तप दीखै थोथरा, तीरथ ब्रत बिस्वास।
सूत्रा सेंभल सेइ कै, फिर उड़ि चला निरास ॥ १ ॥
तीरथ ब्रत बिष बेलरी, सब जग राखा छाय।
कबीर मूल निकंदिया, कौन हलाहल खाय ॥ २ ॥
तीरथ ब्रत करि जग मुश्रा, जूड़े पानी न्हाय।
सत्त नाम जाने बिना, काल जुगन जुग खाय ॥ ३ ॥
तीरथ चाले दुइ जना, चित्त चंचल मन चोर।
एको पाप न उतरिया, मन दस लाये और ॥ ४ ॥
न्हाये धोये क्या भया, जो मन का मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहै, धोये बास न जाय ॥ ५ ॥
निर्मल गुरु के नाम से, कै निर्मल साधू भाय।
कोइला होय न ऊजला, सौ मन साबुन लाय ॥ ६ ॥
कोटि कोटि तीरथ करै, कोटि कोटि करि धाम।
जब लगि साधु न सेइहै, तब लगि काँचा काम ॥ ७ ॥
मन में तो फूला फिरै, करता हूँ मैं धर्म।
कोटि करम सिर पर चढ़ै, चेति न देखै मर्म ॥ ८ ॥
और धरम सब करम हैं, भक्ति धरम निःकर्म।
नदिया हत्यारी अहै, कुवा बावड़ी भर्म ॥ ९ ॥
कर्म हमारे काटिहै, कोइ गुरुमुख कलि माहिं।
कहै हमारी बासना सो गुरुमुख कहियत नाहिं ॥१०॥
बहुत दान जो देत हैं, करि करि बहुते आस।
काहू के गज होहिंगे, खइहैं सेर पचास ॥११॥

पंडित और संस्कृत का अंग

संस्कृतहिं पंडित कहै, बहुत करै अभिमान।
भाषा जानि तरक करै, ते नर मूढ़ अजान ॥ १ ॥
संस्किरत संसार में, पंडित करै बखान।
भाषा भक्ति दृढ़ावही, न्यारा पद निरबान ॥ २ ॥
संसकिरत है कूप जल, भाषा बहता नीर।
भाषा सतगुरु सहित है, सत मत गहिर गँभीर ॥ ३ ॥
पूरन बानो बेद की, सोहत परम अनूप।
आधी भाषा नेत्र बिन, को लखि पावै रूप ॥ ४ ॥
बानी तो पानी भरै, चारो बेद मजूर।
करनी तो गारा करै, रहनी का घर दूर ॥ ५ ॥
बेद कहै जानौं न कछु, स्वासा के सँग आय।
दरस हेतु करुँ बंदगी, गुन अनेक मैं गाय ॥ ६ ॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
एकै अच्छर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय ॥ ७ ॥
पढ़ि पढ़ि तो पत्थर भया, लिखि लिखि भया जो ईंट।
कबीर अन्तर प्रेम की, लगी न एकौ छींट ॥ ८ ॥
पंडित पोथी बाँधि के, दे सिरहाने सोय।
वह अच्छर इन में नहीं, हँसि दे भावै रोय ॥ ९ ॥
पडित केरी पोथियाँ, ज्यों तीतर को ज्ञान।
औरन सगुन बतावही, अपना फंद न जान ॥१०॥
पढ़े गुने सीखे सुने, मिटी न संसय सूल।
कह कबीर का से कहूँ, येही दुख का मूल ॥११॥
कबीर पढ़ना दूर करु, पुस्तक देहु बहाय।
बावन अच्छर सोधि के, सत नाम लौ लाय ॥१२॥
पढ़ना गुनना चातुरी, ये तो बात सहल।
काम दहन मन बसि करन, गगन चढ़न मुसकिल ॥१३॥

पंडित और मसालची, दोनों सूझै नाहिं।
औरन को करैं चाँदना, आप अँधेरे माहिं ॥१४॥
नहिं कागद नहिं लेखनी, नहिं अच्छर है सोय।
पाँचहि पुस्तक छाड़ि के, पंडित कहिये सोय ॥१५॥
धरती अम्बर ना हता, कौन था पंडित पास।
कौन महूरत थापिया, चाँद सूर आकास ॥१६॥
पंडित बोरो पत्तरा, काजी छोड़ु कुरान।
वह तारीख बताइदे, थे न जमीं असमान ॥१७॥
बाम्हन गुरु है जगत का, करम भरम का खाहि।
उरझि पुरझि के मरि गया, चारो बेदाँ माहें ॥१८॥
बाम्हन गदहा जगत का, तीरथ लादा जाय।
जजमान कहे मैं पुन किया, वह मिहनत का खाय ॥१९॥
बाम्हन तें गदहा भला, आन देव तें कुत्ता।
मुलना तें मुरगा भला, सहर जगावे सुत्ता ॥२०॥
कबीर बाम्हन की कथा, सो चोरन की नाव।
सब अंधे मिलि बैठिया, भावै तहँ लैजाव ॥२१॥
कबीर बाम्हन बूड़िया, जनेऊ केरे जोरि।
लख चौरासी माँगि लइ, सतगुरु सेती तोरि ॥२२॥
कलि का बाम्हन मसखरा, ताहि न दीजे दान।
कुटुम्ब सहित नरकै चला, साथ लिया जजमान ॥२३॥

मिश्रित का अंग

साईं केरे बहुत गुन, लिखे जो हिरदे माहिं।
पिऊँ न पानी डरपता, मत वे धोये जाहिं ॥ १ ॥
सुपने में साईं मिले, सोवत लिया जगाय।
आँखि न खोलूँ डरपता, मत सुपना है जाय ॥ २ ॥
सोऊँ तो सुपने मिलूँ, जागूँ तो मन माहिं।
लोचन राते सुभ घड़ी, बिसरत कबहूँ नाहिं ॥ ३ ॥

कबीर साथी सोइ किया, दुख सुख जाहि न कोय।
हिलि मिलि कै सँग खेलई, कधी बिछोह न होय ॥ ४ ॥
यार बुलावै भाव से, मो पै गया न जाय।
धन मैली पिउ ऊजला, लागि न सक्कूँ पाँय ॥ ५ ॥
तरवर तासु बिलंबिये, बारह मास फलंत।
सीतल छाया सघन फल, पंछि केल करंत ॥ ६ ॥
तरवर सरवर संतजन, चौथे बरसै मेंह।
परमारथ के कारने, चारो धारैं देंह ॥ ७ ॥
नवन नवन बहु अंतरा, नवन नवन बहु बान।
ये तीनों बहुतै नवै, चीता चोर कमान ॥ ८ ॥
कबीर सुख को जाय था, आगे मिलिया दुक्ख।
जाहु सुक्ख घर आपने, हम जानैं अरु दुक्ख ॥ ६ ॥
कबीर सीप समुद्र को, खारा जल नहिं लेय।
पानी पावै स्वाँति का, सोभा सागर देय ॥१०॥
ऊँची जाति पपीहरा, पियै न नीचा नीर।
कै सुरपति[1] को याँचई, कै दुख सहै सरीर ॥११॥
पड़ा पपीहा सुरसरी[2], लगा बधिक का बान।
मुख मूँदे स्रुत गगन में, निकस गये यों प्रान ॥१२॥
पपिहा पन को ना तजै, तजै तो तन बेकाज।
तन छूटे तो कछु नहीं, पन छूटे है लाज ॥१३॥
चात्रिक[3] सुतहिं पढ़ावहीं, आन नीर मत लेय।
मन कुल यही सुभाव है, स्वाँति बूँद चित देय ॥१४॥
जा के हिरदे गुरु बसैं, सो जन कल्पै काहि।
एकै लहर समुद्र की, दुख दरिद्र सब जाहि ॥१५॥
प्रेम प्रीति से जो मिलै, ता से मिलिये धाय।

(१) इन्द्र। (२) गंगा। (३) पपीहा।

अन्तर राखे जो मिलै, ता से मिलै बलाय ॥१६॥
हाथी अटका कीच में, काढ़े कोइ समरत्थ।
कै निकसै बल आपने, कै धनी पसारै हत्थ ॥१७॥
भूप दुखी अवधू दुखी, दुखी रंक बिपरीत।
कह कबीर यह सब दुखी, सुखी संत मन जीत ॥१८॥
काँसे ऊपर बीजुली, परै अचानक आय।
ता तें निर्भय ठीकरा, सतगुरु दिया बताय ॥१९॥
लम्बा मारग दूर घर, बिकट पंथ बहु मार।
कह कबीर कस पाइये, दुर्लभ गुरु दीदार ॥२०॥
कबीर मैं तो बैठि कै, सब से कहूँ पुकारि।
धरा[1] धरै सो धरि कुटै, अधर धरै सो तारि ॥२१॥
हेरत हेरत हे सखी, हेरत गया हिराय।
बुन्द समानी समुँद में, सो कित हेरी जाय ॥२२॥
हेरत हेरत हे सखी, रहा कबीर हिराय।
समुँद समाना बुँद में, सो कित हेरा जाय ॥२३॥
बुंद समानी समुँद में, सो जानै सब कोय।
समुँद समाना बुंद में, जानै बिरला कोय ॥२४॥
एक समाना सकल में, सकल समाना ताहि।
कबीर समाना बूझ में, जहाँ दूसरा नाहिं ॥२५॥
गुरु नहीं चेला नहीं, नहिं मुरीद नहिं पीर।
एक नहीं दूजा नहीं, बिलमे तहाँ कबीर ॥२६॥
बृच्छ जो ढूँढ़ै बीज को, बीज बृच्छ के माहिं।
जीव जो ढूँढ़ै पीव को, पीव जीव के माहिं ॥२७॥
आदि होत सब आप में, सकल होत ता माहिं।
ज्यों तरवर के बीज में, डार पात फल छाहिं ॥२८॥

(१) पृथ्वी।

खुलि खेलो संसार में, बाँधि न सक्कै कोय।
घाट जगाती क्या करै, जो सिर बोझ न होय ॥२६॥
घाट जगाती धर्मराय, सब का झाश[1] लेय।
सत्तनाम जाने बिना उलटि नरक में देय ॥३०॥
जब का माई जनमिया, कतहुँ न पाया सुक्ख।
डारी डारी मैं फिरौं, पात पात में दुक्ख ॥३१॥
कबीर मैं तो तब डरौं जो मुझही में होय।
मीच बुढ़ापा आपदा, सब काहू में सोय ॥३२॥
सात दीप नौखंड में, तीन लोक ब्रह्मंड।
कह कबीर सब को लगै, देंह धरे का दंड ॥३३॥
देंह धरे का दंड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान करि, अज्ञानी भुगतै रोय ॥३४॥
एक बस्तु के नाम बहु, लीजै बस्तु पिछानि।
नाम पच्छ नहिं कीजिये, सार तत्त ले जानि ॥३५॥
सब काहू का लोजिये, साचा सबद निहारि।
पच्छपात ना कीजिये, कहै कबीर बिचारि ॥३६॥
देखन ही की बात है, कहने की कछु नाहिं।
आदि अंत को मिलि रहा, हरिजन हरि ही माहिं ॥३७॥
सबै हमारे एक हैं, जो सुमिरै सत नाम।
बस्तु लही पहिचानि कै, बासन से क्या काम ॥३८॥
आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत।
अब पछिताये होत का, चिरियाँ चुग गइँ खेत ॥३९॥
कबीर दर दीवान जो, क्योंकर पावै दाद।
पहिले बुरा कमाइ कै, पाछे करै फरियाद ॥४०॥
कौन कसै अरु कौन कसावै, कौन जो लेइ छुड़ाय।

(१) तलाशी।

यह संसा जिव है रही, साधु कहौ समझाय ॥४१॥
काल कसै अरु कर्म कसावे, सतगुरु लेइ छुड़ाय।
कहै कबीर बिचारि कै, सुनौ संत चित लाय ॥४२॥
माटी में माटी मिली, मिली पौन से पौन।
मैं तोहि बूझौं पंडिता, दो में मूवा कौन ॥४३॥
कुमति हती सो मिटि गई, मिट्यो बाद हंकार।
दूनों का मरना भया, कहै कबीर बिचार ॥४४॥
जूआ चोरी मुखबिरी, ब्याज घूस पर नारि।
जो चाहै दीदार को, ऐती बस्तु निवारि ॥४५॥
करता दीखै कीरतन, ऊँचा करि के तुंड।
जानै बूझै कछु नहीं, यों ही आधा रुंड ॥४६॥
मो में इतनी सक्ति कहँ, गाओं गला पसार।
बंदे को इतनी घनी, पड़ा रहै दरबार ॥४७॥
रचनहार को चीन्हि ले, खाने को क्या रोय।
दिल मंदिर में पैठि करि, तानि पिछौरा सोय ॥४८॥
सब से भली मधूकरी, भाँति भाँति का नाज।
दावा काहू का नहीं, बिना बिलायत राज ॥४९॥
भौसागर जल बिष भरा, मन नहिं बाँधै धीर।
सबद-सनेही पिउ मिला, उतरा पार कबीर ॥५०॥
हंसा बगुला एक रँग, मानसरोवर माहिं।
बगुला ढूँढ़ै माछरी, हंसा मोती खाहिं ॥५१॥
तन संदूक मन रतन है, चुपके दे हठ ताल।
गाहक बिना न खोलिये, पूँजी सबद रसाल ॥५२॥
हीरा गुरु का सबद है, हिरदे भीतर देख।
बाहर भीतर भरि रहा, ऐसा अगम अलेख ॥५३॥
कै खाना कै सोवना, और न कोई चीत।
सतगुरु सबद बिसारिया आदि अंत का मीत ॥५४॥

। ... कारने, जग याच्यो निसि जाम।
॥६८॥ ...र चढ़यो, सरयो न एकौ काम ॥५५॥
... टोकरा, लीये डोलै साथ।
॥६९॥ ...ा नहीं, जनम गँवाया बाद ॥५६॥
कलि का स्व... लोभिया, मनसा रहा बँधाय।
रुपया देवै ब्याज पर, लेखा करत दिन जाय ॥५७॥
कलि का स्वामी लोभिया, पीतरि धरै खटाइ।
राज दुवारे यों फिरै, ज्यों हरियाई गाइ ॥५८॥
राज दुवारे साधुजन, तीनि बस्तु को जाय।
कै मीठा कै मान को, कै माया की चाय ॥५९॥
कबीर कलिजुग कठिन है, साधु न मानै कोय।
कामी क्रोधी मस्खरा, तिन कौ आदर होय ॥६०॥
सतगुरु की साची कथा, कोई सुनही कान।
कलिजुग पूजा डिम्भ की, बाजारी कौ मान ॥६१॥
देखन को सब कोइ भला, जैसा सीत का कोट।
देख... हा ढहि जायगा, बाँधि सकै नहिं पोट ॥६२॥
पद गावै मन हरखि कै, साखी कहै अनन्द।
तत्त मूल नहिं जानिया, गल में परिगा फंद ॥६३॥
नाचै गावै पद कहै, नाहीं गुरु से हेत।
कह कबीर क्यों नीपजै, बीज बिहूना खेत ॥६४॥
चतुराई क्या कीजिये, जो नहिं पदहिं समाय।
कोटिक गुन सुवना पढ़ै, अंत बिलाई खाय ॥६५॥
ब्रह्महिं तें जग ऊपजा, कहत सयाने लोग।
ताहि ब्रह्म के त्याग बिनु, जगत न त्यागन जोग ॥६६॥
ब्रह्म जगत का बीज है, जो नहिं ता को त्याग।
जगत ब्रह्म में लीन है, कहहु कौन बैराग ॥६७॥

नेत नेत जेहिं बेद कहि, जहाँ न मन ठहराय। ।४१।।
मन बानी की गमि नहीं, ब्रह्म कहा किन आय -
एक कर्म है बोवना, उपजे बीज बहूत । ।४२।।
एक कर्म है भूँजना, उदय न अंकुर सूत । ४३।।
चाँन सुरज निज किरनि को, त्याग कवन बिधि कीन ।
जा की किरनी ताहि में, उपजि होत पुनि लीन ।।७
जब दिल मिला दयाल से, फाँसी गई बिलाय ।
मोहिं भरोसा इष्ट का, बंदा नरक न जाय ।।७
जब दिल मिला दयाल से, तब कछु अन्तर नाहिं ।
पाला गलि पानी भया, यों हरिजन हरि माहिं ।।७
कबीर मोह पिनाक[1] जग, गुरु बिनु टूटत नाहिं ।
सुर नर मुनि तोरन लगे, छुवत अधिक गरुआहि ।।७३
साधू ऐसा चाहिये, ज्यों मोती में आब ।
उतरे तें फिरि नहिं चढ़ै, अनादर होइ रहाब ।।७४।।
मूरख लघु को गरु कहैं, लघु गरु कहैं बनाय ।
यह अबिचारी देखि कै, कहत कबीर लजाय ।।७५।।
कबीर निगुरे नरन को, संसय कबहुँ न जाय ।
संसय छूटै गुरु कृपा, तासु बिमुख जहँडाय[2] ।।७६।।
कबीर जो गुरु-बेमुखी, (तेहि) ठौर न तीनिउँ लोक ।
चौरासी भरमत फिरै, भोगै नाना सोक ।।७७।।
गुरु झरोखे बैठि के, सब का मुजरा लेइ ।
जैसी जा की चाकरी, तैसा ता को देइ ।।७८।।
नाम रतन धन संत पहँ, खान खुली घट माहिं ।
सेंतमेंत ही देत हौं, गाहक कोई नाहिं ।।७९।।

।। इति ।।

---

(१) धनुष । (२) ठगाय ।